ा० राजेन्द्र प्रसाद
चित्रावली
वाल्मीकि चौधरी

जीरादेई से राष्ट्रपति भवन त

आज से सौ वर्ष पूर्व बिहार के एक अत्यन्त पिछड़े इलाके के एक साधारण से गांव, जीरादेई, में जिस दिन राजेन्द्र प्रसाद का जन्म हुआ था तब किसे पता था कि गरीबी और गुलामी के कठोर नागपाश में जकड़ी भारतभूमि ने एक ऐसा रत्न उत्पन्न किया है जिसे एक दिन स्वतंत्र भारत की कृतज्ञ जनता देश के सर्वोच्च सिंहासन पर बिठाल कर निहाल होगी।

राजेन्द्र प्रसाद की जीरादेई से राष्ट्रपति भवन तक की यात्रा हमारे देश के गुलामी के अन्धकार से गुजर कर स्वतंत्रता के उजाले में प्रवेश करने की कहानी भी है।

चम्पारण में गांधीजी के सहयोगी के रूप में सार्वजनिक जीवन में पहली बार प्रवेश करके राजेन्द्र बाबू अपनी बौद्धिक प्रखरता, कार्य-कुशलता, सेवा-भाव, सत्यनिष्ठा और सहृदयता जैसे गुणों के बल पर कांग्रेस के अध्यक्ष, संविधान सभा के सभापति और स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रपति पद पर पहुंचे।

राजेन्द्र प्रसाद की सौम्य मुखाकृति, चमकती हुई आंखें, सघन भौंहें, प्रशस्त ललाट तथा आडम्बरहीन सहज-सरल व्यवहार उन्हें एक ऐसा मोहक व्यक्तित्व प्रदान करते थे कि जो भी उनके सम्पर्क में आता, हृदय से उनका प्रशंसक बने बिना नहीं रह सकता था। वह सचमुच अजातशत्रु थे। कभी किसी ने उन्हें कठोर वचन बोलते नहीं सुना। परदुःख-कातरता उनका सहज गुण था और अहंकार तो उन्हें छू तक नहीं गया था।

इस पुस्तक में अत्यन्त रोचक शैली और सुबोध भाषा में उसी अजातशत्रु की कथा प्रस्तुत की है श्री वाल्मीकि चौधरी ने।

मूल्य: 18.00
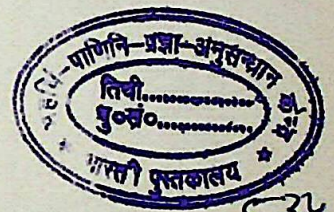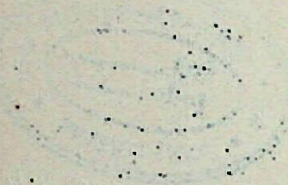
डा० राजेन्द्र प्रसाद चित्रावली

डा० राजेन्द्र प्रसाद चित्रावली
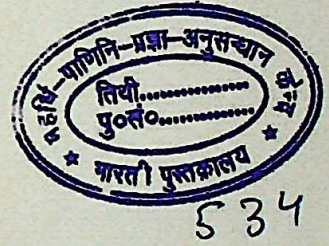
वाल्मीकि चौधरी

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

कार्तिक 1905 • नवम्बर 1983

मूल्य: 18.00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र • प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ड, कलकत्ता-700069
- एल० एल० आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
- 10 बी०, स्टेशन रोड, लखनऊ-226004
- स्टेट आर्किलाजिकल म्यूजियम बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद-500004

एलाइड पब्लिशर्स प्रा० लि०, ए-104 मायापुरी, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।
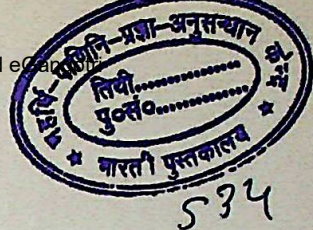
प्राक्कथन

स्वतंत्र भारत के निर्माताओं में प्रथम पंक्ति के नेता और भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद से देश गौरवान्वित हुआ है। वह एक महामानव थे जिनको अजातशत्रु कहा जाता था। गांधीजी के सच्चे अनुयायी थे। बिहार के गांधी कहलाते थे। गांधीजी के निकट कई रत्न इकट्ठे हुए थे, उनमें वे ही देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद कहलाए।

डा० राजेन्द्र प्रसाद रंग-रूप से, वेष-भूषा से, बोल-चाल से, रहन-सहन से, आचार-विचार से, खान-पान से, भीतर-बाहर से, दिल और दिमाग से, यानी सब तरह से भारतीयता और भारत के प्रतीक थे। उनके स्मरण से देशवासियों को युग-युग तक सच्चे नागरिक बनने तथा देश सेवा करने की प्रेरणा मिलती रहेगी। राजेन्द्र प्रसाद मेधावी छात्र थे। जब से उन्होंने पढ़ाई प्रारम्भ की तब से लेकर कालिज की पढ़ाई के अन्त तक वह कक्षा में सर्वप्रथम पास होते रहे।

सार्वजनिक जीवन में उनकी कार्य-कुशलता, सेवा-परायणता, बौद्धिक प्रखरता, सच्चाई, सहृदयता, सहज गाम्भीर्य और सौजन्य, सभी बेमिसाल थे। वह सार्वजनिक सेवा के प्रतीक थे। उनमें ऐसे अनेक अद्भुत गुण थे जिनसे देश के प्रत्येक क्षेत्र के लोगों को उनकी याद से प्रेरणा मिलती रहेगी।

एंट्रेंस की परीक्षा पास करते ही राजेन्द्र प्रसाद की प्रतिभा का परिचय मिल गया। वकालत शुरू करते ही उनकी प्रतिभा की परख हो गई। प्रारम्भ से ही इनकी साधारण वेश-भूषा एवं संकोची स्वभाव को देखकर लोग हैरान हो जाते। उन्हें विश्वास नहीं होता कि ग्रामीण - सा लगने वाला यह व्यक्ति इतना प्रतिभावान होगा।

राजेन्द्र प्रसाद की मुखाकृति, उनकी चमकती हुई आंखें, सघन भौंहें, बेतरतीब छंटी हुई मूंछें, लंबी नाक और प्रशस्त ललाट तथा आडंबरहीन सहज-सरल व्यवहार उन्हें एक ऐसा मोहक व्यक्तित्व प्रदान करते थे कि जो भी उनके सम्पर्क में आता, हृदय से उनका प्रशंसक बने बिना नहीं रह सकता था। उनका आचार-व्यवहार सहज एवं मधुर होता। क्रोध उनके चेहरे पर फटकने नहीं पाता था। कभी किसी ने उन्हें कठोर वचन बोलते नहीं सुना। परदुःख-कातरता उनका सहज गुण था और अहंकार तो उन्हें छू तक नहीं गया था।

उसी महापुरुष की यह सचित्र जीवनी उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष है।

पुलिन बिहारी बड़ठाकुर

निदेशक, प्रकाशन विभाग

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

1. बचपन

महादेव सहाय के तीन लड़कियां और दो लड़के हुए। बहनों में सबसे बड़ी भगवती देवी एवं भाइयों में सबसे बड़े महेन्द्र प्रसाद और सबसे छोटे राजेन्द्र प्रसाद थे।

परिवार में सबसे बड़ी बहन भगवती देवी को अपने सबसे छोटे भाई राजेन्द्र प्रसाद से बहुत प्यार था। भगवती देवी का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से हुआ और शादी बड़े अरमानों के साथ की गई। शादी धूमधाम से इसलिए भी की गई कि महादेव सहाय के समय में इनकी यह पहली शादी थी। पर श्रीमती भगवती देवी पन्द्रह साल की उम्र में विधवा हो गईं। बाल-विधवा के रूप में वे अपने मां-बाप के पास लौट आईं।

वैधव्य हिन्दू समाज में कलंक की बात रही है। विधवा होते ही घर में उसकी सभी मान मर्यादाएं छिन जाती हैं। उसको किसी भी शुभकार्य में सम्मिलित होने से रोक दिया जाता है। इसी तरह के अनेक अपमान विधवा को सहने पड़ते हैं।

राजेन्द्र प्रसाद के परिवार में विधवा की मर्यादा को उच्च स्थान दिया गया। अतः भगवती देवी के मान-सम्मान में उनके विधवा हो जाने की वजह से कोई कमी नहीं आई; बल्कि उन्हें घर के और लोगों से भी अधिक सम्मान मिलता रहा।

महेन्द्र प्रसाद राजेन्द्र प्रसाद से आठ साल बड़े थे। राजेन्द्र प्रसाद के आगे बढ़ने, पढ़ने और सार्वजनिक जीवन में प्रवेश पाने में उनकी सहायता सराहनीय थी। महेन्द्र प्रसाद जैसे बड़े भाई न होते तो राजेन्द्र प्रसाद को सार्वजनिक सेवा में उलझन पैदा होती। गांधीजी और महेन्द्र प्रसाद की वजह से राजेन्द्र प्रसाद जैसा महामानव इस देश को मिला। राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा भी पिता तुल्य इस भाई को ही समर्पित की।

राजेन्द्र प्रसाद का जन्म सिवान जिला के जीरादेई गांव में विक्रमी सम्वत् 1941 की अगहन की पूर्णिमा, तदनुसार 3 दिसम्बर, 1884 को हुआ। उस समय कौन यह कह सकता था कि ऐसे पिछड़े गांव का यह बालक एक दिन भारत को गुलामी से मुक्त कराने में प्रमुख रूप से भाग लेगा।

राजेन्द्र प्रसाद आठ साल की उम्र तक घर पर ही मौलवी साहब से पढ़ते रहे। रात को जल्दी सोना, प्रातः उठ जाना, यह आदत बचपन से थी। उनके बचपन से सम्बन्धित कई कहानियां प्रसिद्ध हैं। दस-बारह साल की उम्र तक वह अपने हाथ से नहीं खाते थे। रात को जल्दी सो जाने की वजह से बचपन में निद्रा में ही खिलाया जाता था। तोता-मैना की कहानी सुना-सुनाकर मुंह खुलवाया जाता। मुंह खोल भर लेते थे और उसमें दाल-भात रख दिया जाता था। मां के पास सोते। भोर में मां से रामायण की कहानी सुना करते थे। घर में औरतें प्रभाती गाती थीं, उसे भी सुना करते थे। बचपन में सुनी प्रभाती और रामायण की कहानी का उनके जीवन पर बड़ा असर पड़ा। राजेन्द्र प्रसाद के परिवार में प्रायः औरतों में व्रत, त्यौहार की प्रथा रही है। ऐसे परिवार में बालक के स्वभाव पर अच्छा प्रभाव स्वाभाविक है।

राजेन्द्र प्रसाद बचपन से ही सीधे-साधे और भोले थे। लड़कपन से किसी को किसी बात के लिए तंग नहीं करते थे। कभी किसी चीज के लिए हठ नहीं करते। बचपन से ही संकोची स्वभाव के थे, खाने-पहनने को जो कुछ मिल जाता उसी में संतोष कर लेते थे।

पिता मुंशी महादेव सहाय का देहान्त 1907 में हो गया। उसके बाद घर का भार महेन्द्र प्रसाद पर पड़ा। राजेन्द्र प्रसाद जब कभी घर आते या पटना रहते, उनका बक्सा देखकर उनके कपड़े आदि महेन्द्र प्रसाद बनवा देते । आवश्यक सामान एवं ज़रूरत के मुताबिक खर्च के लिए रुपये दे देते। जवाहरलाल नेहरू को पंडित मोतीलाल नेहरू जैसा उदार और बादशाह तबियत का पिता मिला, राजेन्द्र प्रसाद को भी ठीक उसी प्रकार का अग्रज मिला। महेन्द्र प्रसाद को अपने छोटे भाई राजेन्द्र प्रसाद की सुख-सुविधा जुटाने में आनन्द मिलता था।

2. विद्यार्थी जीवन

राजेन्द्र प्रसाद को पांच साल की उम्र में एक मौलवी द्वारा बिसमिल्लाह के साथ उर्दू-फारसी से अक्षरारम्भ कराया गया। मौलवी साहब को घर में एक कमरा दे दिया गया था जिसके बरामदे में उन का मकतब लगा करता था। मकतब में राजेन्द्र प्रसाद अपने दो साथियों के साथ सवेरे आ जाया करते थे। तख्त पर बैठकर सामने रखे डेस्क पर स्लेट-किताब रखते और झूमते हुए पढ़ते। पिछले दिन जो पढ़ाया या लिखाया जाता, अगले दिन सबसे पहले मौलवी साहब उसी को सुनते, उसी को लिखवा कर देखते। जो पिछले सबक को ठीक से पढ़-लिख देता उसीको आगे का सबक दिया जाता। यही सिलसिला दो साल तक रहा। पाठ को कण्ठस्थ करने की आदत उन्हें मकतब में ही पड़ी। अगले पाठ को पढ़कर जाने का अभ्यास हुआ। जो भी पाठ पढ़ाया जाता उसको पहले से पढ़कर जाने पर उसको समझने में आसानी रहती। राजेन्द्र प्रसाद जो शुरू से अन्त तक अपनी क्लास में प्रथम आते रहे उसका यही राज़ है।

राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में बचपन और गांव के वातावरण के सम्बन्ध में लिखा है— "एक चीज़ जिसका असर बचपन से ही मुझ पर पड़ा है, वह है- रामायण-पाठ।" हिन्दू-मुसलमानों के सम्बन्ध और प्रेम के बारे में उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है- "क्या रामलीला, क्या रामायण-पाठ और व्रत-त्यौहारों द्वारा गांव में धार्मिक जीवन हमेशा जगा रहता था। इनके अलावा मुहर्रम में ताजिया रखने का भी रिवाज था। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल होते थे। जीरादेई और जामापुर में कुछ हिन्दू सम्पन्न थे इसलिए उनका ताजिया गरीब मुसलमानों के ताजिये से अधिक बड़ा और शानदार हुआ करता था। जिस तरह हिन्दू मुहर्रम में शरीक होते उसी तरह मुसलमान भी होली के शोर-गुल में शरीक होते। हम बच्चे दशहरा, दिवाली और होली के दिन मौलवी साहब की बताई ईदी अपने बड़ों को पढ़कर सुनाते। उनसे रुपये मांगकर मौलवी साहब की मदद से सुन्दर फूल बनाकर उसे लाल, हरे, नीले और बैंगनी रंगों में रंगते। उसी पर मौलवी साहब सुन्दर अक्षरों में ईदी लिखकर देते। इसे हम लोग पढ़कर सुनाते। उसमें जो लिखा जाता वह भी कुछ अजीब सम्मिश्रण होता। जैसे दिवाली की ईदी में लिखा होता-दीवाले आपके हंगाम जूता। दशहरे की ईदी में लिखा जाता-दशहरे को चले तो रामचन्दर बनाकर रूप योगी वो कलन्दर, इत्यादि। माहवारी मुशाहरे के अलावा मौलवी साहब को प्रत्येक बृहस्पतिवार को कुछ पैसे जुमराती के रूप में और त्यौहारों में ईदी के रूप में मिल जाया करते।"

राजेन्द्र प्रसाद पहली बार आठ वर्ष की उम्र में छपरा स्कूल में भर्ती हुए। गांव से बाहर जाने का यह पहला अवसर था। इस सम्बन्ध में वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं: "मुझे जहां तक स्मरण है, यही पहला अवसर था जब मैं रेल पर चढ़ा। मेरे छपरा पहुंचने के कुछ ही दिनों बाद जिला स्कूल के आठवें दर्जे में, जो उन दिनों सबसे आरम्भिक दर्जा कहा जाता था, मेरा नाम लिख दिया गया। मैंने वहीं ए,बी,सी और नागरी अ,आ,इ,ई एक साथ लिखना-पढ़ना शुरू किया। भाई (महेन्द्र प्रसाद) उस समय दूसरे दर्जे से तरक्की पाकर अव्वल दर्जे अर्थात् एंट्रेंस क्लास में पहुँचे थे। मेरे लिए कोई मास्टर नहीं रखा गया। स्कूल की पढ़ाई के अलावा अगर कुछ पूछना होता तो भाई से पूछ लेता। घर पर मुझे पढ़ाने के लिए मास्टर का न रखना बहुत अच्छा हुआ। स्कूल की पढ़ाई पर खूब ध्यान देने की आदत बन गई। आरम्भिक काल से ही अपने ऊपर कुछ भरोसा करना भी आ गया।

"साल के अन्त में भाई एंट्रेंस की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और मैं अपना सालाना इम्तहान दे रहा था। इम्तहान में मेरे नम्बर बहुत अच्छे आए। मैं दर्जे में अव्वल रहा। नम्बर भी इतने आए कि हेडमास्टर ने मुझे डबल तरक्की देने की बात सोची। परीक्षा फल सुनाया गया। हम सब लड़के खुशियां मना रहे थे कि चपरासी ने आकर कहा कि हेडमास्टर मुझे बुलाते हैं। हेडमास्टर उन लड़कों को ही बुलाया करते थे जिनके खिलाफ कोई शिकायत होती। मैं बहुत डर गया और डरते-डरते वहां गया। पर वहां जाकर डर दूर हो गया। उन्होंने पूछा-तुम डबल तरक्की लेकर सातवें के बदले छठे क्लास में जाओगे? मैं उस समय कुछ घबड़ा सा गया। कुछ खुशी-विस्मय और कुछ इस बात का भय कि एक वर्ष की पढ़ाई कैसे लांघी जा सकेगी। मैंने उत्तर दिया कि भाई से पूछ कर बताऊंगा। उन्होंने पूछा कि भाई कौन है। मेरे नाम बताने पर वे हंसे। भाई को वे जानते थे क्योंकि भाई को भी तो उन्होंने ही पढ़ाकर एंट्रेंस परीक्षा की अनुमति दी थी जिसके लिए वह तैयारी कर रहे थे। उन्होंने कहा-'वह क्या मुझसे इस बात को अधिक समझ सकता है जो तू उससे पूछना चाहता है? खैर, जाकर पूछ आ। मैं वहाँ से दौड़ता हुआ भाई के पास पहुँचा। वहां बाबू बांके बिहारी लाल (स्वर्गीय) और मौलवी सफ़ी दाऊद, तीनों एक साथ इम्तहान की तैयारी कर रहे थे। मैं वहीं गया और तीनों यह खबर सुनकर बहुत खुश हुए। आपस में कुछ सलाह हुई। भाई का विचार हुआ कि एक क्लास लांघ जाने में मैं पीछे कमज़ोर पड़ जाऊंगा और आगे की पढ़ाई ठीक नहीं होगी। वे मेरे साथ हेडमास्टर के पास पहुंचे और उनसे अपनी राय कही। हेडमास्टर ने हंसकर फिर वही बात कही- 'क्या तू मुझसे इस बात को ज्यादा समझता है?' फलतः सातवां लांघकर उन्होंने मुझे छठे क्लास में भेज दिया।"[1]

राजेन्द्र प्रसाद अपने बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद के साथ छपरा में किराए का एक छोटा-सा घर लेकर रह रहे थे। छपरा में दो साल ही पढ़ पाए कि इनके बड़े भाई एंट्रेंस की परीक्षा पास कर पटना पढ़ने चले आए। जब वे पटना चले आए तो राजेन्द्र प्रसाद को भी पटना आना पड़ा। यहीं टी. के. घोष एकेडेमी में इनका नाम लिख दिया गया। छपरा से पटना शहर बड़ा था। स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या भी कहीं अधिक थी। राजेन्द्र प्रसाद को यहां यह महसूस हुआ कि छपरा में एक क्लास लांघना पड़ा इसलिए यहां मेहनत करके अपनी क्लास में दूसरे लड़कों के मुकाबले में आगे रहने का प्रयत्न करना होगा। पटना में भी उनके लिए कोई मास्टर नहीं रखा गया। स्वयं पढ़कर स्कूल में स्थान बनाए रखने का वह प्रयत्न करते रहे।

1. तब कक्षाओं का क्रम आज से उलटा होता था।

बचपन से पढ़ने की एक अच्छी आदत पड़ी थी। प्रतिदिन क्लास की पढ़ाई को घर पर पूरा दोहराया जाता। पाठ को वह ऐसा पढ़ते थे कि करीब-करीब उसे कण्ठस्थ कर लेते। इतना ही नहीं, दूसरे दिन होने वाली पढ़ाई को घर से पढ़कर जाते। इस अभ्यास को पटना में भी जारी रखा। और इसका नतीजा अच्छा निकला। वे क्लास में कभी किसी से पीछे नहीं रहे। परीक्षा में भी सबसे आगे रहे।

छपरा की पढ़ाई से और राजेन्द्र प्रसाद के जीवन से दो प्रमुख उदाहरण मिलते हैं। एक, भाई का आज्ञाकारी होना, अभिभावक के रूप में उन पर अपने को समर्पित कर देना। दूसरा, तरक्की की इच्छा नहीं रखना। नतीजे का ख्याल किए बगैर परिश्रम पर पूरा भरोसा करना।

टी.के.घोष एकेडेमी में दो वर्ष ही पढ़ पाए थे कि इनके बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद एफ.ए. की परीक्षा पास कर कलकत्ता चले गए। राजेन्द्र प्रसाद का उस समय कलकत्ता जाना सम्भव नहीं था। उनको अकेले पटना छोड़ना भी उचित नहीं समझा गया। इसलिए राजेन्द्र प्रसाद का नाम हथुआ हाईस्कूल में लिखा दिया गया। हथुआ में पढ़ाई की ठीक व्यवस्था नहीं थी। इसलिए छह महीने के बाद छपरा जिला स्कूल में चौथी क्लास में नाम लिखा दिया गया। छपरा जिला स्कूल में लड़कों की संख्या बहुत अधिक थी। खासकर चौथी क्लास में अधिक संख्या होने की वजह से इसमें तीन सेक्शन थे। राजेन्द्र प्रसाद का नाम 'क' सेक्शन में लिखा गया। श्री रसिक लाल, बंगाली मास्टर, इनके क्लास टीचर थे। राजेन्द्र प्रसाद की प्रतिभा को देखकर वे इनसे बहुत खुश रहते थे। एक दिन की बात है, उन्होंने इनसे कहा कि अगर तुम इसी तरह पढ़ते रहे तो अन्त में तुम्हारा और रामानुग्रह का ही मुकाबला होगा। इस सम्बन्ध में राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, "न मालूम उन्होंने ऐसा क्यों कहा पर बात ऐसी ही हुई, केवल उनकी भविष्यवाणी पूरी होने में दो-तीन साल लग गए।" राजेन्द्र प्रसाद की जब दूसरे दर्जे से अव्वल दर्जे में जाने की परीक्षा हुई तो, उसमें राजेन्द्र प्रसाद अव्वल और रामानुग्रह दूसरे स्थान पर आए।

दूसरे दर्जे की सालाना परीक्षा चल रही थी। उसी समय छपरा में बहुत जोरों से प्लेग की बीमारी फैली। दो दिन परीक्षा देने के बाद राजेन्द्र प्रसाद बीमार हो गए। गले में सूजन आ गई। ज्वर तेज होने के कारण आगे दो दिन की परीक्षा में नहीं बैठ पाए। वे जीरादेई आ गए। घर पर इतने दिन रुके रहे कि फीस जमा नहीं करने की वजह से इनका नाम कट गया। परीक्षाफल निकला तो देखा गया कि दोनों विषयों में वे अव्वल आए थे। नम्बर भी इतने अधिक थे कि बाकी दो विषयों में परीक्षा दिए बगैर उन्हें पास कर दिया गया। इसी समय वहां दूसरे हेडमास्टर बदल कर आए। फीस जमा की गई, नाम लिख लिया गया। इनके दो विषयों के नम्बरों को देखकर इनको पहले दर्जे (एंट्रेंस) में जाने की इजाज़त दे दी गई। इसलिए भी ऐसा किया गया कि जो लड़का पूरी परीक्षा देकर पास हुआ था उससे भी अधिक नम्बर राजेन्द्र प्रसाद के सिर्फ दो विषयों में आए थे। यह लड़का था रामानुग्रह। राजेन्द्र प्रसाद उत्साहित हुए। एंट्रेंस की परीक्षा की तैयारी मन लगाकर करने लगे।

इसी समय नियमानुसार लड़कों से छात्रवृत्ति के लिए दरख्वास्त मांगी गई। राजेन्द्र प्रसाद ने भी दरख्वास्त दी। बीमारी की वजह से अधिक दिनों तक गैर-हाजिर रहने के कारण दरख्वास्त अनियमित पाई गई। हेडमास्टर ने इनसे कहा कि एंट्रेंस में अच्छे नम्बर पाने वाले लड़कों को सरकार अथवा यूनिवर्सिटी की ओर से छात्रवृत्ति मिलती है। इसके लिए भी लड़कों की सालभर स्कूल में

हाज़िरी आवश्यक है। राजेन्द्र प्रसाद का नाम गैर-हाजिर रहने की वजह से कट चुका था इसलिए इनको छात्रवृत्ति नहीं मिल सकती थी पर इस नियम से मुक्ति पाने के लिए इनके संरक्षक से दरख्वास्त दिलवाई गई। कारण बीमार रहना बताया गया। किन्तु बीमारी में किसी सरकारी डाक्टर के इलाज में नहीं रहने की वजह से किसी डाक्टर का सार्टिफिकेट प्रस्तुत नहीं कर सके। फिर भी इंस्पेक्टर के पास दरख्वास्त भेज दी गई। इंस्पेक्टर ने पिछला परीक्षा परिणाम देखा। उसने स्कूल की गैर-हाज़िरी के बंधन से राजेन्द्र प्रसाद को मुक्त कर दिया। दरख्वास्त डायरेक्टर के पास भेजने की ज़रूरत नहीं समझी गई।

राजेन्द्र प्रसाद जब छपरा में पढ़ते थे तब वहां उनके अभिभावक एक पंडित थे। उनका नाम विक्रमादित्य मिश्र था। वे कट्टर सनातनी थे। वे प्रतिदिन सरयू नदी में स्नान करते थे। पूजा-पाठ के बाद स्वयं भोजन बनाते, तब खाते थे। वहीं पास में एक ठाकुरबाड़ी में पूजा-पाठ करते। फुर्सत के समय वे राजेन्द्र प्रसाद को कथा कहानी सुनाते। रामायण-महाभारत तथा ऐसे ही दूसरे धार्मिक ग्रन्थों से कुछ-कुछ सुनाते थे। राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में इनकी चर्चा में लिखा है, "इनकी संगति का मेरे तथा दूसरे लड़कों के दिल पर जैसा अच्छा असर पड़ना चाहिए, पड़ा था।"

1902 में यूनिवर्सिटी की परीक्षा यानी एंट्रेंस की परीक्षा में बैठने के पहले स्कूल की सालाना परीक्षा हुई। इसमें जो लड़के पास होते उनको ही यूनिवर्सिटी की परीक्षा में बैठने की इजाज़त मिलती। राजेन्द्र प्रसाद स्कूल की परीक्षा में बहुत नम्बर लाकर सबसे ऊपर आए। फिर भी उन्हें ऐसा नहीं लगता था कि वह परीक्षा में यूनिवर्सिटी में कोई स्थान पाएंगे पर वह यूनिवर्सिटी की परीक्षा की तैयारी में लग गए। इनके पढ़ने का ढंग यह था कि केवल परीक्षा के लिए नहीं पढ़ते थे और न ही केवल परीक्षा के समय ही सरतोड़ परिश्रम करते थे। लगातार अपनी पढ़ाई जारी रखते। लिखने के अभ्यास पर ध्यान देते। उसी का नतीजा था कि वह सभी वर्गों में प्रथम आए। अन्त में एंट्रेंस की परीक्षा में भी इतने नम्बर लाए कि यूनिवर्सिटी में सर्वप्रथम रहे। उस समय आज की तरह यूनिवर्सिटी का दायरा छोटा नहीं होता था। आज तो प्रत्येक राज्य में कम से कम चार-पांच यूनिवर्सिटियां हो गई हैं। जिस समय राजेन्द्र प्रसाद ने एंट्रेंस की परीक्षा पास की, कलकत्ता यूनिवर्सिटी के अन्तर्गत बिहार, बंगाल, उड़ीसा, असम, बर्मा और नेपाल के स्कूल और कालेज थे। इतने सारे प्रान्तों के लड़के एक साथ परीक्षा में बैठते थे। उसकी कापियां दूर-दूर तक जाँच के लिए जाया करती थी। उस समय कापियां जांचने का मापदण्ड भिन्न था। बहुत कड़ाई से उनकी जांच की जाती थी। परीक्षक विद्वान और प्रत्येक विषय के विशेषज्ञ हुआ करते थे। कोई परीक्षक बर्मा के होते तो कोई उड़ीसा के, कोई बंगाल के तो कोई बिहार के। कापियां जांचने के मापदण्ड सबके भिन्न थे।

राजेन्द्र प्रसाद पिछड़े गांव के लड़के थे। इनकी पहुंच पटना से अधिक बढ़ नहीं पाई थी। इसके अलावा वे बचपन से ही संकोची स्वभाव के थे। सदा काम की बात करते। काम के लोगों से भी वे उतनी ही बात करते जितनी आवश्यकता रहती। किसी से दोस्ती करने या ज्यादा सम्पर्क बढ़ाने में भी वे बहुत संभल कर चलते थे। संकोची स्वभाव उनकी विशेषता थी। ऐसे संकोची राजेन्द्र प्रसाद अधिक महत्वाकांक्षी भी न थे। सच तो यह है कि उन्हें अपने बड़प्पन का कभी भान ही नहीं रहा। इसलिए प्रथम श्रेणी में पास होने के समाचार को इन्होंने साधारण भाव से लिया। कोई विशेष हर्ष या उल्लास इस समाचार से उन्हें नहीं हुआ।

राजेन्द्र प्रसाद एंट्रेंस की परीक्षा देने पटना गए। परीक्षा देकर सीधे घर (जीरादेई) आ गए। गर्मी की छुट्टी में भाई भी घर आ गए। एक दिन गांव में ही खेत-खलिहान में घूम रहे थे। किसी ने आकर कहा-राजेन्द्र प्रसाद प्रथम श्रेणी में पास हो गए। उनको सुनकर आश्चर्य नहीं हुआ। छलांग मारना या उड़ान भरना इनके स्वभाव में नहीं था। वह सीधे-साधे गांव के विद्यार्थी थे।

परन्तु राजेन्द्र प्रसाद तो एंट्रेंस की परीक्षा में यूनिवर्सिटी में प्रथम आए। इस खबर से घर में खुशी की लहर दौड़ गई। राजेन्द्र प्रसाद को तो उस समय घर के लोगों की बातचीत से ही इस बात का ज्ञान हुआ कि यूनिवर्सिटी में प्रथम आने का अर्थ क्या है।

महेन्द्र प्रसाद पहले से कलकत्ता में पढ़ते थे। राजेन्द्र प्रसाद भी आगे की पढ़ाई कलकत्ता में करेंगे यह निश्चय हो गया। छात्रवृत्ति पहले से मिलती ही थी। एंट्रेंस की परीक्षा का फार्म भरने के समय ही लिख देना पड़ा था कि एंट्रेंस की परीक्षा में जो छात्रवृत्ति मिलेगी वह छात्रवृत्ति कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में पढ़कर खर्च करेंगे। इस निश्चय के अनुसार प्रेसीडेंसी कालेज में नाम लिखाना तय हो गया।

राजेन्द्र प्रसाद जहां भी पढ़े, चाहे जीरादेई, चाहे छपरा या पटना हो, वे अपने हाथ से खर्च नहीं करते थे। इनके हाथ में खर्च के लिए रुपये नहीं होते थे। सभी जगह दुकानदार तय किया रहता। वहीं से जरूरत के मुताबिक सामान मिल जाया करता था। जहां-जहां रहे, ऐसे अभिभावक बनाए गए जिनके माध्यम से सब हिसाब साफ होता। दुकानदार के यहां से उतनी ही चीजें लेते जितनी कि इनके पढ़ने और खाने के काम में आने वाली होतीं। इससे इनको दो लाभ मिले: एक-फिजूल खर्ची से बचते गए और दूसरा-हर महीने का खर्च निश्चित रूप से करते रहे।

कलकत्ता में 1902 में एफ० ए० में नाम लिखाने गए। कलकत्ता रवाना होने से पूर्व वे अपने पुराने हेडमास्टर से आशीर्वाद लेने गए। उन्होंने उनको दो-तीन बातों की चेतावनी देते हुए कहा कि ऐंट्रेंस में प्रथम आने से तुम्हारी जवाबदेही बहुत बढ़ गई है। यह पहला अवसर है कि कोई बिहारी विद्यार्थी यूनिवर्सिटी में प्रथम रहा है। बंगाल के लड़के इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे। वे एफ० ए० की परीक्षा में हराने का प्रयत्न करेंगे। कुछ बुरे लड़के दूसरे प्रकार से बिगाड़ कर गिरा देने से बाज नहीं आएंगे। इसलिए कलकत्ता में बड़ी सावधानी और चौकसी से रहना होगा। बड़े परिश्रम से इस सम्मान को आगे भी कायम रखना होगा। कलकत्ता बहुत बड़ा शहर है। खेल-तमाशे तथा दूसरी तरह की बुरी चीज़ें भी वहां बहुत हैं। सबसे बचना होगा। राजेन्द्र प्रसाद पर उनकी बातों का असर पड़ा और उन्होंने निश्चय किया कि वहां परिश्रम से पढ़कर आगे भी इस स्थान को बनाए रखेंगे।

वे केवल परीक्षा के समय परीक्षा पास करने के लिए नहीं पढ़ते थे। राजेन्द्र प्रसाद प्रारम्भ से ही अध्ययनशील थे। इनके पढ़ने का ढंग और तौर-तरीका कुछ ऐसा था कि वे जो भी स्कूल में पढ़ाया जाता उसे हमेशा के लिए याद कर लेते। लिखने का अभ्यास बराबर करते रहते। समय पर घण्टे-दो घण्टे खेलते, बाकी समय पढ़ने में बिताते थे। इसका नतीजा जो मिलना चाहिए था, सो मिला। वे शुरू से लेकर आखिर तक पढ़ाई में अव्वल रहे। इससे उनके "कैरियर" पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। यही नहीं, उनके पढ़ने के ढंग और संस्कार ने उनकी जीवन पद्धति का निर्माण किया। हर बात को गहराई

से सोचना, उसकी तह तक जाना और तदनुसार निर्णय लेना, फिर उसे काम में लाना- यह सब उनकी जीवन-पद्धति की विशेषता बन गई।

उन्हें जो ठीक लगा उस पर उन्होंने निष्ठापूर्वक आचरण भी किया। उनकी कथनी और करनी में कभी अंतर नहीं रहा तथा उनकी निष्ठा में कभी किसी को सन्देह नहीं रहा। इन गुणों के मूल में इनके पढ़ने के तौर-तरीके का बहुत हाथ है। यदि वे केवल परीक्षा पास करने और उसमें अच्छे अंक प्राप्त करने के उद्देश्य से ही पढ़ते तो उनके व्यक्तित्व में कहीं-न-कहीं कुछ कसर रह जाती।
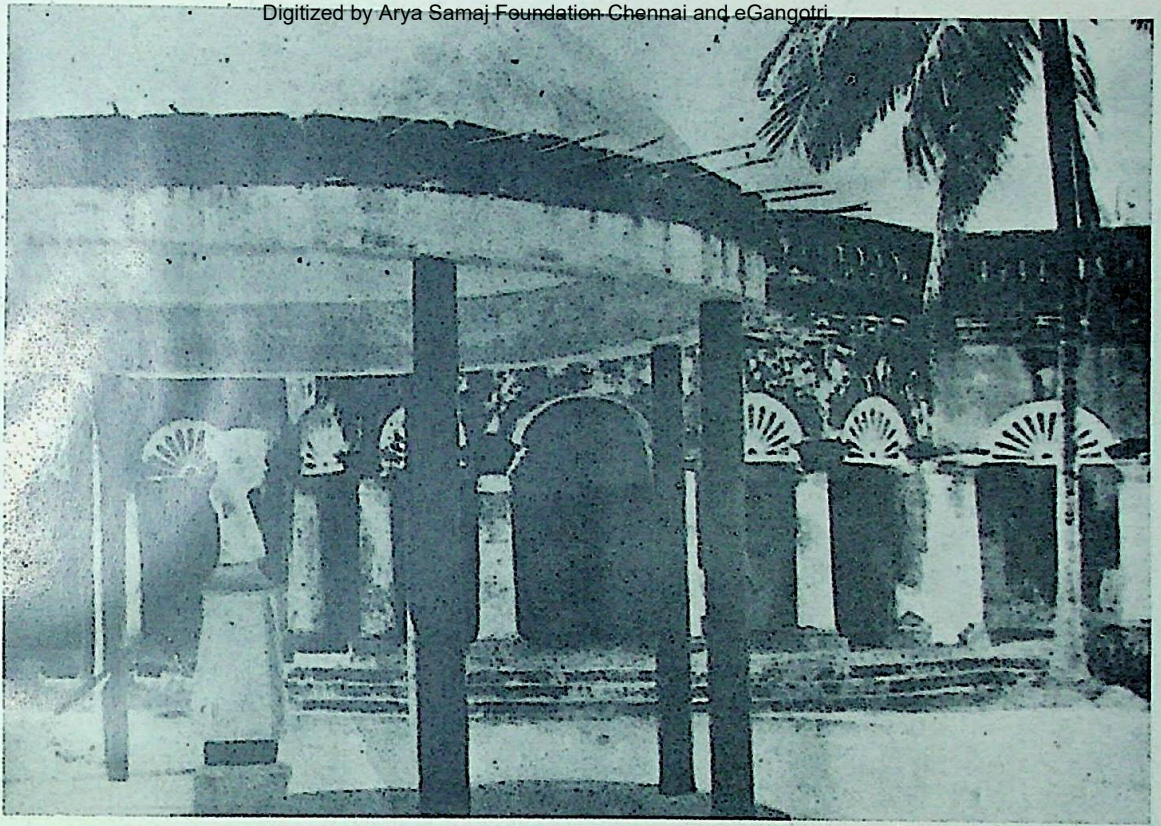
जीरादेई स्थित वह मकान जिसमें
राजेन्द्र बाबू का जन्म हुआ
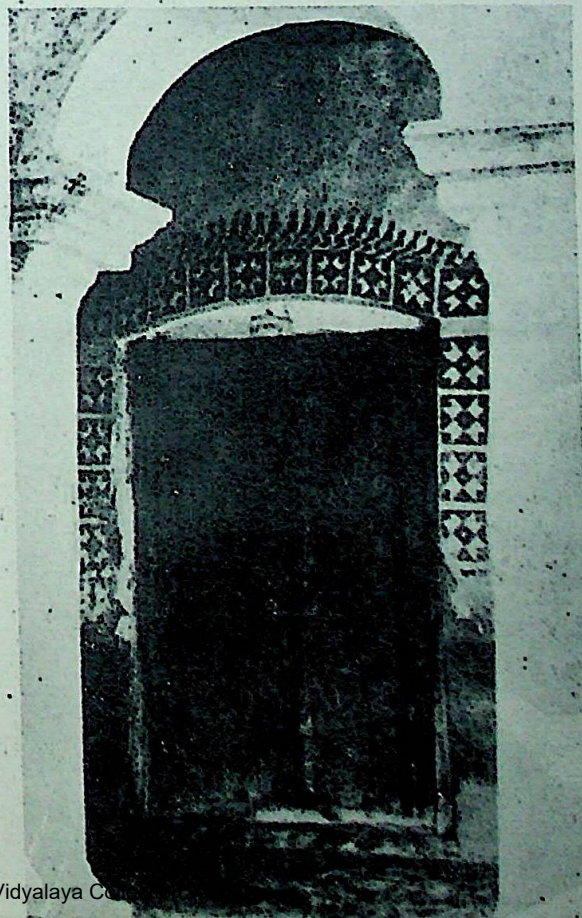
वह कमरा जिसमें उनका जन्म हुआ
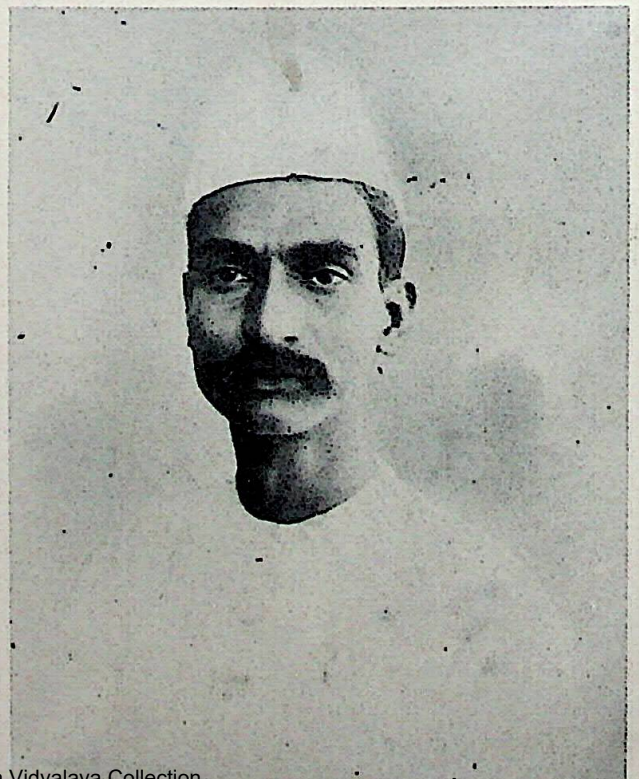
राजेन्द्र बाबू की बड़ी बहन भगवती देवी

←

अग्रज महेन्द्र प्रसादजी

राजेन्द्र बाबू एम.ए. पास करने के बाद अपने सहपाठियों के साथ (ऊपर बाएं से तीसरे)

तरुण राजेन्द्र प्रसाद

←

कांग्रेस अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद (1934)

एम. एल. की परीक्षा में सर्वप्रथम आने पर डिग्री के साथ
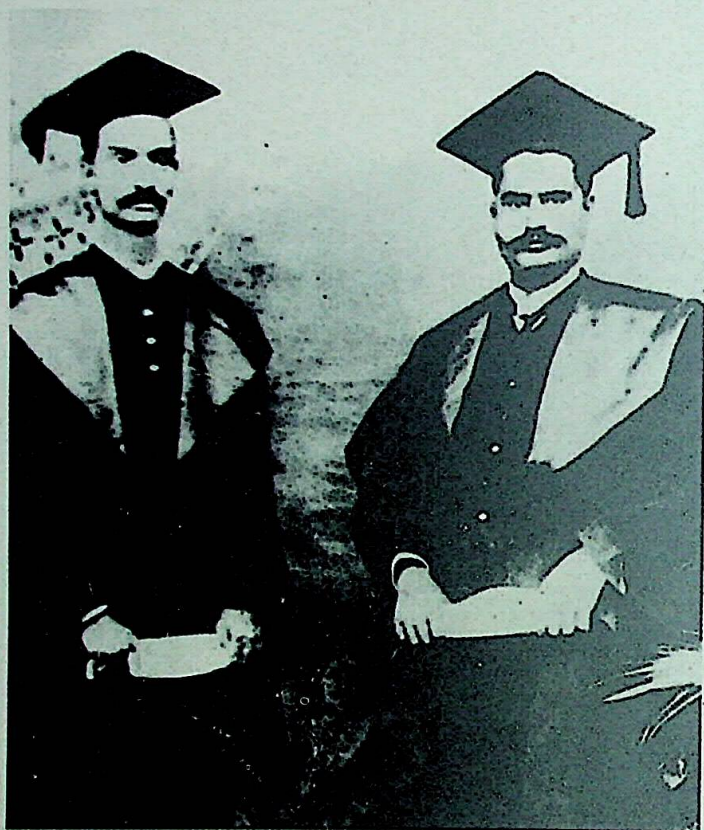
राजेन्द्र बाबू लेखक के साथ
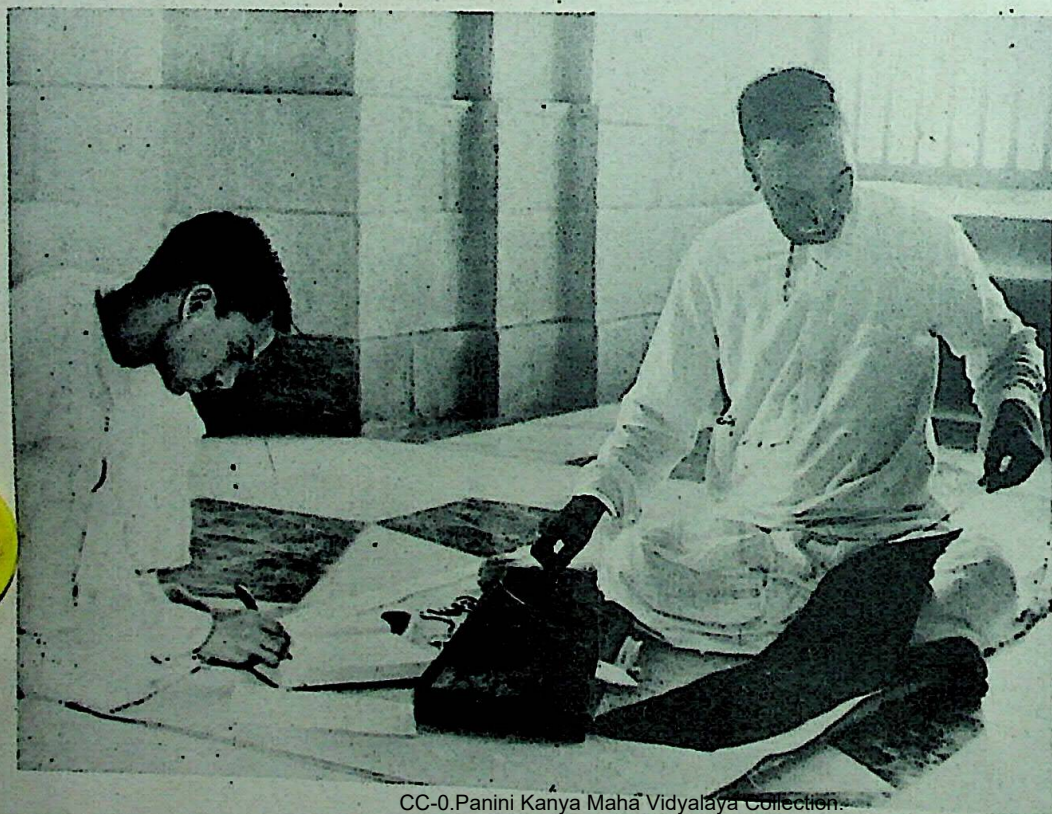
3. देश-सेवा की ओर

राजेन्द्र प्रसाद जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वप्रथम आए उन्होंने विद्यार्थी जीवन से ही देश सेवा का काम आरम्भ किया। 1905 में बंग़ाल में स्वदेशी आन्दोलन चला। उसमें भी राजेन्द्र प्रसाद ने सक्रिय भाग लिया। उसी समय राजेन्द्र प्रसाद के दिल में यह बात आई कि बंगाल के विद्यार्थी संगठन की तरह बिहार में भी छात्रों का वैसा संगठन होना चाहिए। उसके द्वारा वहां भी स्वदेशी का प्रचार किया जाए। इस विचार के साथ वे कलकत्ता से पटना आए। इस सम्बन्ध में वे बिहार के कुछ बड़े लोगों से मिले, जिनमें श्री सच्चिदानन्द सिन्हा और बाबू महेश नारायण आदि थे। 'बिहार टाइम्स' का सम्पादन महेश नारायण के हाथ में था। बिहार छात्र संगठन पर विचार हुआ। थोड़े ही दिनों में राजेन्द्र प्रसाद ने बिहार में जहां-जहां कालेज थे वहां-वहां जाकर छात्र समितियां बनवा दीं तथा उन सबको छात्र-संगठन से सम्बद्ध कर लिया। इस प्रकार बिहार के छात्रों का एक संगठन बन गया। सबको मिलाकर पटना में छात्रों की प्राथमिक प्रतिनिधि सभा का आयोजन किया गया। इसमें सभी जगहों के छात्रों के प्रतिनिधि लिए गए।

इस सम्बन्ध में राजेन्द्र प्रसाद अपनी आत्मकथा में लिखते है: "मुझे याद है कि नियम बनने के समय दो प्रश्नों पर आपस में बहुत बहस हुई। एक प्रश्न था कि यह संगठन राजनीति में भाग लेगा या नहीं। इस पर छात्रों में ही बहुत मतभेद था। बड़े लोगों में तो सभी विरोधी थे। अन्त में यह तय हो गया कि संगठन किसी प्रकार के राजनीतिक आन्दोलन में भाग नहीं लेगा, चाहे वह राष्ट्रवादी हो अथवा राजभक्ति प्रचारक। हमने यह निश्चय करके, अब मालूम होता है, बुद्धिमानी दिखलाई। बिहार बंगाल का ही हिस्सा था, सूबा अलग नहीं हुआ था। बिहार शिक्षा में बहुत पिछड़ा था। यहां सार्वजनिक जीवन तो प्रायः नहीं के बराबर था। विशेषकर छात्र तो बिहार से बाहर की बात कुछ जानते ही नहीं थे। अभी तक बिहार का कोई राजनीतिक संगठन भी अलग नहीं था। यह पहला ही संगठन था जिसमें सारे बिहार के लोग, चाहे वे नवयुवक छात्र ही क्यों न हों, अलग एकत्र होकर अपने प्रश्नों पर विचार करने बैठे थे। ऐसी अवस्था में अगर हम संभल कर नहीं चलते तो शायद यह संगठन टिक ही नहीं पाता।

ऐसे छात्र संगठन का कोई नमूना सामने नहीं था, अतः उसका निजी रूप बनाना था। संगठन का नाम तो शुरू से ही था- 'बिहार छात्र संगठन'। यह संगठन 1906 में कायम हुआ। 1920 तक, जब

असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ, यह प्रति वर्ष अपना जलसा करता रहा। इसका पहला सम्मेलन पटना के नामी बैरिस्टर मि० शुर्फुद्दीन के सभापतित्व में किया गया।

मुंगेर में बिहार छात्र सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में हुआ। बंग-भंग आन्दोलन के अवसर पर बिहार के सामने एक नया प्रश्न आया था। बंगाल से बिहार और उड़ीसा को हटाकर अलग सूबे बनाने थे। सम्राट जार्ज पंचम का 1911 में दिल्ली में दरबार लगा। उसी में बंगाल से बिहार-उड़ीसा को अलग प्रान्त बनाने की घोषणा हुई। बिहार का अलग सूबा बनने के साथ ही इसके विकास की बात उन छात्रों के सामने थी।

छात्र संगठन के बारे में वह आत्मकथा में लिखते हैं: "जितने दिनों तक यह काम करता रहा, बड़े उत्साह और लगन के साथ सारे सूबे के छात्र इसमें शरीक होते रहे। इसी के द्वारा छात्रों ने संगठन कार्य को क्रियात्मक रूप से सीखा। उन पन्द्रह वर्षों में जितने भी जानदार और उत्साही युवक बिहार में हुए सब इस संगठन से अनुप्राणित हुए। उन्होंने अपने निजी स्वार्थ के अलावा देश-विदेश की कुछ बातें सीखीं। उनमें थोड़ी-बहुत त्याग की प्रवृत्ति भी आई। जब महात्मा गांधी बिहार आए, इस छात्र संगठन के भूतपूर्व कार्यकर्ता ही उनके साथ हुए। बाद में असहयोग आन्दोलन में वही आगे बढ़े। वे इसी के उत्पादित फल थे। भारत की आज़ादी के पूर्व और बाद भी प्रायः उन्हीं लोगों ने सूबे के नेतृत्व का भार वहन किया।"

उसी समय पटना में यूनिवर्सिटी कायम करने के लिए दिल्ली की कौंसिल में एक बिल पेश हुआ। उस विधेयक में यूनिवर्सिटी का सारा प्रबन्ध सरकारी आदमी के हाथ में रखा गया था। इसका विरोध राजेन्द्र प्रसाद ने किया। उनका विरोध-पत्र और संशोधन श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, श्री परांजपे, श्री मजहरुल हक साहब के माध्यम से कौंसिल में रखा गया।

इस सम्बन्ध में राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है "हमारे सामने कलकत्ता यूनिवर्सिटी थी। वहां के वाइस चान्सलरों ने शिक्षा के प्रचार में बड़ी निर्भीकता से काम किया था। विशेषकर सर आशुतोष मुखर्जी हमारी आंखों के सामने थे। वहाँ के सिण्डीकेट और सिनेट अगर सर आशुतोष मुखर्जी का साथ न देते तो वह बहुत कुछ न कर पाते। हम समझते थे कि हमारे यहाँ पहले तो उनके जैसा आदमी जल्दी नहीं मिलेगा और अगर मिला भी तो सिनेट और सिण्डीकेट के विरोध के सामने कुछ न कर सकेगा। इसलिए हम चाहते थे कि सिनेट और सिंडीकेट में शिक्षकों के अलावा दूसरे लोगों को जनता के प्रतिनिधि के रूप में काफी जगहें दी जाएं।"

इसमें इनको काफी सफलता मिली। पटना यूनिवर्सिटी बनने पर गवर्नर ने राजेन्द्र प्रसाद को सिनेट का सदस्य मनोनीत किया। पटना में हाईकोर्ट बन जाने के बाद वे पटना रहने लगे। पटना हाईकोर्ट में बहुत सारे मुकदमे आने लगे थे। हाईकोर्ट में काम करने के बावजूद वे सार्वजनिक काम में भी बहुत व्यस्त रहे। राजेन्द्र प्रसाद में संगठन करने की अपूर्व शक्ति और क्षमता थी।

राजेन्द्र प्रसाद एम.ए. के छात्र थे तभी 1906 के कांग्रेस अधिवेशन में पहले स्वयंसेवक

(वालंटियर) की हैसियत से शरीक हुए। उस समय कांग्रेस में गरम दल-नरम दल का आविर्भाव हो चुका था। गरम दल के नेता लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष आदि समझे जाते थे। नरम दल के नेता सर फिरोज शाह मेहता, गोखले आदि थे। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और पं० मदन मोहन मालवीय बीच का स्थान रखते थे। इस मतभेद को मिटाने तथा इसमें नरमी लाने के लिए दादाभाई नौरोजी को विलायत से बुलाकर सभापति बनाया गया था।

कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में राजेन्द्र प्रसाद स्वयंसेवक के रूप में भर्ती हुए थे। उस अधिवेशन के सम्बन्ध में वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं:— "सौभाग्य से मुझे कांग्रेस पंडाल की ड्यूटी मिली थी। इसलिए मैं विषय-निर्धारिणी समिति में सब बहसें सुन चुका था। कांग्रेस पंडाल में अधिवेशन के समय पहले दिन मैं कुछ दूरी पर रखा गया था। वहां से सभापति का भाषण नहीं सुन सका। मैंने देखा कि अधिकांश स्वयंसेवक अपने स्थान को छोड़कर भीतर चले गए। मैंने ऐसा करना उचित नहीं समझा। अपनी ड्यूटी के स्थान पर ही डटा रहा। सरोजिनी देवी, मालवीयजी और मि० जिन्ना के भाषण पहले-पहल इसी कांग्रेस में सुने। कांग्रेस के साथ प्रदर्शनी भी बहुत जबरदस्त हुई थी। अधिवेशन देख करके कांग्रेस के बारे में श्रद्धा अधिक बढ़ गई। पर अभी कई वर्षों तक मुझे इसमें बाज़ाब्ता शरीक होने का अवसर नहीं मिला। यह अवसर पहले पहल मिला 1911 में, जब कांग्रेस फिर कलकत्ते में हुई। उस समय से आज (1949) तक मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का मेम्बर रहा हूं।"

4. सत्पुरुष की यात्रा

राजेन्द्र प्रसाद का राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान देने का एकमात्र उद्देश्य देश की सेवा करना था, अधिकार और पद प्राप्त करना नहीं। पद की लिप्सा तो उन्हें छू तक नहीं गई थी।

कलकत्ता में "डाउन सोसाइटी" नामक एक संस्था स्थापित हुई। राजेन्द्र प्रसाद उसके क्रियाशील सदस्य थे। सप्ताह में इसकी दो बैठकें हुआ करती थीं। एक बैठक में गीता का पठन-पाठन होता था और दूसरी में विभिन्न विषयों पर विभिन्न विद्वानों के भाषण होते थे। सिस्टर निवेदिता, सर गुरुदास बनर्जी, सर आशुतोष, रवीन्द्र नाथ ठाकुर आदि विद्वान उसमें शरीक हुआ करते थे। राजेन्द्र प्रसाद के भी भाषण वहां होते थे। उस भाषण में उनको कई बार पारितोषिक मिला। एक बार के भाषण में यह शर्त रखी गई थी कि जो विद्वान जिस भाषा में अपना भाषण देंगे उसमें किसी दूसरी भाषा के शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए। उसमें प्रथम आने वालों को एक अच्छी रकम पारितोषिक के रूप में मिलेगी। एक बार राजेन्द्र प्रसाद हिन्दी में बोले। उन्होंने अपने भाषण में किसी दूसरी भाषा के शब्दों का प्रयोग नहीं होने दिया। फलतः वे प्रथम आए और उनको पुरस्कृत किया गया। सिस्टर निवेदिता तो राजेन्द्र प्रसाद के बारे में अक्सर कहा करती थीं कि वह भारत के भावी नेता हैं। इसके पूर्व कलकत्ता विश्वविद्यालय में, जिसके अन्दर पूर्वी भारत के सभी प्रान्त-बिहार, उड़ीसा, बंगाल, असम और बर्मा थे- राजेन्द्र प्रसाद के सर्वप्रथम आने पर 'हिन्दुस्तान रिव्यू' आदि पत्रों ने ऐसी भविष्यवाणियां की थीं।

'हिन्दुस्तान रिव्यू' ने लिखा था- "इनके लिए भविष्य के गर्भ में सब कुछ रखा है। इसमें जरा भी आश्चर्य नहीं है। ईश्वर इनको स्वस्थ रखे। भारतीयों को उपलब्ध कोई भी पद उनकी महत्वाकांक्षा से परे नहीं होगा। हमें आशा है वह अपने प्रान्त के हाईकोर्ट में न्यायाधीश का पद प्राप्त करेंगे और इस संबंध में नियुक्ति पत्र राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में सभापतित्व करते समय प्राप्त होगा, जैसा कि लाहौर में न्यायाधीश श्री चन्द्रावरकर को मिला था।"

राजेन्द्र प्रसाद शुरू से ही संकोची स्वभाव के थे। वे जल्दी किसी से बगैर काम के नहीं मिलते और मिलते भी थे तो जल्दी अपनी ओर से कुछ नहीं कहते थे। वकालत करते समय ही 1910 में इनके जीवन-क्रम को बदलने के लिए एक घटना घटी। 1910 के मार्च में माननीय श्री गोपाल कृष्ण गोखले कलकत्ता पधारे। राजेन्द्र प्रसाद से श्री परमेश्वर लाल बैरिस्टर ने कहा कि तुम माननीय गोखले से

मिलो। उन्होंने तुमको मिलने के लिए बुलाया है। राजेन्द्र प्रसाद को यह जानकर आश्चर्य हुआ। वे इससे पूर्व गोखले जी से नहीं मिले थे। अब उन्होंने बुलाया है, यह बात उनको विचित्र मालूम हुई। श्री परमेश्वरलाल बैरिस्टर ने कहा कि वे तुम्हारे नाम से परिचित हैं। वे होनहार युवकों से मिलने की इच्छा रखते हैं। इसमें तुम्हारा नाम उनके सामने है। इस घटना के संबंध में राजेन्द्र प्रसाद अपनी आत्मकथा में लिखते हैं— "हम अपने एक साथी के साथ माननीय गोखले से, जहां वे ठहरे थे, जाकर मिले। उन्होंने थोड़े ही दिन पहले 'सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी' की स्थापना की थी। वे चाहते थे कि बिहार के कुछ अच्छे नवयुवक उसमें शरीक हों। उन्होंने देश की सेवा पर जोर देकर हम लोगों से उसमें शरीक होने को कहा। वे जानते थे कि हम दोनों ने यूनिवर्सिटी की परीक्षाएं अच्छी तरह पास की हैं और वकालत की तैयारी कर रहे हैं। उन्होंने कहा— 'हो सकता है कि तुम्हारी वकालत खूब चले, बहुत रुपये तुम पैदा कर सको, बहुत आराम और ऐश-इशरत में दिन बिताओ। बड़ी कोठी, घोड़ागाड़ी, नौकर इत्यादि दिखावट के सामान जो अमीरों के पास हुआ करते हैं, तुम को सब मिल जाएं। पर मुल्क का भी कुछ दावा लड़कों पर होता है, और चूंकि तुम पढ़ने में अच्छे हो, इसलिए तुम पर वह दावा और भी अधिक है।' अपने बारे में उन्होंने कहा-'मेरे सामने भी यही प्रश्न आया था। मैं गरीब घर का आदमी था। मेरे घर के लोग मुझसे बहुत आशा रखते थे।' इसी प्रकार गोखले जी ने प्रायः डेढ़ घंटे तक हम लोगों से बात की। बात करने का तरीका ऐसा था कि हम पर इसका बहुत गहरा असर पड़ा। अन्त में उन्होंने कहा- 'ठीक इसी समय उत्तर देना जरूरी नहीं है, क्योंकि सवाल कठिन है। विचार करके एक दिन हमसे फिर मिलो और तब अपनी राय दो।' हम वहां से एक प्रकार खोए से वापस आए। उनकी बातों का इतना असर पड़ा कि कोई दूसरी बात सूझती न थी। मुझे तो कई दिनों तक नींद नहीं आई। खाना-पीना सब कुछ बराय नाम रह गया। स्वदेशी के दिनों में देश की बातें सामने आती थीं। देश-सेवा की भावना भी जब तब जागृत होती थी, पर इससे पहले कभी इस तरह से प्रश्न सामने नहीं आया था और न कभी ऐसे बड़े आदमी से मिलकर इस प्रकार के मार्मिक शब्दों को सुनने का सौभाग्य हुआ था। एक ओर उनके द्वारा प्रस्तावित देश के लिए हम जैसे लोगों की सेवा की ज़रूरत, दूसरी ओर भाई पर घर का सारा बोझ लादना। मेरे भी दो पुत्र हो चुके थे, बड़े भाई के भी तीन पुत्रियां थीं और एक लड़का था। मां अब तक जीवित थी। वह क्या कहेगी? कई दिनों तक इस प्रकार की चिन्ता के बाद मैंने निश्चय किया कि मुझे माननीय गोखले की बात मानकर उनकी सोसाइटी में शरीक हो जाना चाहिए। मेरी हिम्मत नहीं होती थी कि भाई से खुलकर कहूं, क्योंकि मुझे डर था कि उनको इससे बहुत दुख होगा। मैंने एक लम्बा पत्र लिखा। पत्र के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं :

कलकत्ता
1-3-1910

पूज्य भाई,

आप एक ऐसे व्यक्ति के पत्र को पढ़कर आश्चर्यचकित होंगे जो यहां आपके साथ रात-दिन बिता रहा है। कुछ बातें हैं जो मुझे आपको लिखने को बाध्य करती हैं। मैंने अनेक बार अपने काम की बातें आपसे कहने का विचार किया, पर एक भावावेशपूर्ण व्यक्ति होने के कारण मैं आपके सामने बातें नहीं कर सका। मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि मैं इस पत्र में जो कुछ कहने जा रहा हूं वह बगैर सोचे-समझे नहीं है।

आपको याद होगा कि करीब 20 दिन पहले मैं माननीय गोखलेजी से मिलने गया था। मेरे सामने उन्होंने 'सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी' में सम्मिलित होने के लिए प्रस्ताव रखा तबसे इस प्रस्ताव की व्यावहारिकता के सम्बन्ध में मेरा दिमाग चक्कर खा रहा है। इस पर लगातार 20 दिनों तक सोचते रहने के बाद मैं समझता हूं कि मेरे लिए यही अच्छा होगा कि मैं अपने भाग्य को देश के साथ मिला दूं। मैं जानता हूं कि मुझसे, जिस पर परिवार की सारी आशाएं केन्द्रीभूत हैं, ऐसी बातें सुनकर आपके हृदय को एक भारी धक्का लगेगा। मैं यह भी जानता हूं कि अगर मैं परिवार को अपने आप संभलने के लिए छोड़ दूं तो परिवार भारी दिक्कतों में पड़ जाएगा। लेकिन, मेरे भैया, मैं एक उच्चतर और महत्तर पुकार भी अपने हृदय के अन्दर महसूस करता हूं। आपको कठिनाई और विपत्ति में छोड़ देना मेरे लिए अकृतज्ञता हो सकती है, पर मुझे आशा है वह झगड़े का कारण नहीं होगा। हम लोगों का प्रेम एक अधिक ठोस नींव पर स्थित है, और एक-दूसरे के मनमानेपन के कारण कितनी ही असुविधाएं और तकलीफें हम लोगों को क्यों न उठानी पड़ें, हमारे परस्पर प्रेम में कुछ कमी नहीं आएगी, बल्कि मेरा झुकाव तो इस बात पर विश्वास करने की ओर है कि वह और सुदृढ़ तथा टिकाऊ होगा। इसलिए मैं आपके सामने प्रस्ताव रखता हूं कि इस कार्य के हितार्थ आप मुझे उत्सर्ग करें। यदि मैं कमाऊं तो, मैं जानता हूं कि मैं कुछ रुपया हासिल कर सकूंगा और शायद इसके द्वारा मैं उस तथाकथित समाज में अपने परिवार का दर्जा ऊंचा करने में भी समर्थ होऊंगा जहाँ लोग अपनी दौलत (प्रचुर धन-सम्पत्ति) के कारण ही बड़े गिने जाते है, अपने विशाल हृदय के कारण नहीं। दुनिया के महापुरुष पहले महादरिद्र ही रहे हैं; वे आरम्भ में खूब सताए गए हैं और नीची नज़र से देखे गए हैं। पर हंसी उड़ानेवाले और सताने वाले धूल में मिल गए, वे अब कभी उठ नहीं सकते, और न उनका नाम अब सुना जा सकता है। मेरे भैया, आप विश्वास रखें, यदि मेरे जीवन में कोई महत्वाकांक्षा है तो वह यही है कि मैं देश की सेवा में काम आ सकूं। मेरी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है, सिवाय इसके कि मैं माता की कुछ सेवा कर सकूं। पर मान लिया जाए कि अगर मेरी कोई महत्वाकांक्षा भी होती तो हाईकोर्ट में मेरी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए कौन सा क्षेत्र है? मैं जानता हूँ कि मैं प्रति मास कई सौ रुपये कमाऊँगा-कई हजार रुपये महीने भी हो सकते हैं—पर क्या दुनिया में ऐसे अनगिनत व्यक्ति नहीं हैं जिनके पास हजारों, लाखों और करोड़ों की पूंजी है, पर जिनकी कोई परवाह नहीं करता, और जिन्हें हममें से कुछ लोग दया के अतिरिक्त और किसी भाव से नहीं देख सकते ?

मेरे भाई, इस पर विचार करें और अपनी राय बतावें। मैंने लगातार 20 दिनों तक इस पर विचार किया है और अब इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि सभी तथाकथित सामाजिक मान मर्यादा और पद निःसार दिखा है—किसी व्यक्ति का बड़प्पन उसके धन की इयत्ता पर निर्भर नहीं करना, बल्कि उसके हृदय की विशालता पर निर्भर करता है और मुझे विश्वास है कि आपका हृदय इतना महान है जितना दुनिया भर में हो सकता है और दुनिया के समक्ष साबित कर दें, कि आज भी दुनिया उच्च विचार वालों से बिलकुल रहित नहीं है। साबित कर दें कि ऐसे मनुष्य भी हैं जिनके लिए रुपये-पैसे तुच्छ वस्तु हैं— जिनके लिए सेवा ही सब कुछ है लाखों की, और अन्ततोगत्वा, पर कुछ कम नहीं—अपने निकटकतम और प्रियतम की भी, कृतज्ञता का भाजन बनें।

मैं अपनी पत्नी को भी इनके सम्बन्ध में लिख रहा हूं। मैं माताजी को नहीं लिख सकता। वृद्धावस्था में उन्हें भारी कष्ट पहुंच सकता है।

आपका प्यारा,
राजेन्द्र

महेन्द्र बाबू को यह चिट्ठी देने के बाद दोनों भाई उसी दिन शाम को कालेज स्क्वायर में मिले, बड़ी रात तक बातें होती रहीं। राजेन्द्र बाबू 'सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी' में शामिल होने के लिए आग्रह कर रहे थे। दोनों बहुत देर तक खूब रोते रहे; पर महेन्द्र बाबू आपके जाने की बात से अत्यन्त दुखित थे। घर की बुरी हालत और माता की मरणासन्न अवस्था में राजेन्द्र बाबू को अपने से विलग होते देखना महेन्द्र बाबू को असह्य हो रहा था। इससे वे अलग ही रो रहे थे। आखिर सब को महान दुःख में डालकर अलग हो जाना राजेन्द्र बाबू जैसे करुण हृदय और संवेदनशील व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हुआ। शायद ईश्वर को भी मंजूर नहीं था कि आप 'सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी' के छोटे से दायरे में जो समय के साथ और भी संकुचित होता गया है, आबद्ध हो जाएं। निश्चय ही ईश्वर ने देश को गुलामी से छुड़ाने के महत्वपूर्ण कार्य के लिए आपको बचा रखा था। अस्तु, राजेन्द्र बाबू रुक गए। अपने काम से भाई को भीषण वेदना पाते हुए देखकर आपने क्षमा मांगते हुए फिर से एक पत्र लिखा। इसके भी कुछ रोचक अंश इस प्रकार हैः—

कलकत्ता
2-3-1910

पूज्य भाई,

मैं नहीं जानता हूँ कि क्या लिखा जाए। एक ही चीज़ है जिसमें मैं गौरव अनुभव करता हूं और वह यह है कि मैं कभी किसी किसी को दुःख नहीं पहुंचाता- और कभी ऐसा करता हूँ तो इसके लिए मैं रोता हूं। आपको या प्रिय वृद्धा माता को दुःख देने से मुझसे और कोई बात दूर नहीं हो सकती है। मैंने यह कभी नहीं समझा था कि जो कुछ मैंने लिखा था वह मेरा अन्तिम या किसी भी प्रकार का निर्णय था। मैंने कभी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया है— और, भगवान करे न भविष्य में कभी ऐसा करूंगा। पितृहीन होने का दुःख मैंने कभी अनुभव नहीं किया, चूंकि मैंने आप में केवल भाई ही नहीं पाया, बल्कि पिता भी। वास्तव में मैं बड़ा ही अभागा हूँगा यदि मैं आपको किसी भी तरह का दुःख पहुंचाऊं। मैं अतिशीघ्र प्रभावित होने वाला नवयुवक हूं, और युवावस्था के सभी दोष मुझ में वर्तमान हैं। अगर आप, जिन्होंने मुझे इतनी भली तरह और इतना ज्यादा प्यार किया है, मुझे क्षमा नहीं करेंगे तो संसार में और दूसरा कौन है जो मुझे क्षमा करेगा। मैंने आपको, जिन्होंने मेरे लिए पिता का स्थान ग्रहण किया है, अनावश्यक दुःख दिया है। मैं नहीं जानता कि किस तरह क्षमा मांगू। मुझे विश्वास है कि आप अपने स्नेह में सभी बातें भूल जाएंगे—किन्तु मैं नहीं जानता कि मैं खुद इसे भूल सकूंगा या नहीं।

मैं अपने प्रति झूठा नहीं बनूंगा, आपसे यह नहीं कहूंगा कि मेरे दिमाग से सब बातें बाहर निकल गईं हैं। ये भुलाई नहीं जा सकतीं- ये तो उस शिक्षा का फल हैं जो मुझे मिली है। मैं सिर्फ यही कह सकता हूँ कि मैं जहां कहीं रहूंगा प्रसन्न रहूंगा, बशर्ते कि मुझसे किसी दूसरे को दुःख नहीं पहुंचे-उनकी तो कुछ बात ही नहीं जो मेरे निकटतम और प्रियतम हैं। जो कुछ मुझे आज्ञा होगी मैं उसे करूंगा, अब और अधिक दुःख आपको नहीं दूंगा। मैं अपने तुच्छ तरीके पर जो कर सकूंगा करूंगा और यह देखकर सुखी रहूंगा कि आप सभी सुखी हैं।

सप्रेम,

आपका प्यारा
राजेन्द्र

5. वकालत के दिन

वकालत में राजेन्द्र प्रसाद की अच्छी ख्याति हुई। इसके मुख्य दो कारण थे। कलकत्ता लॉ कालेज में पढ़ते समय ही वे कलकता हाईकोर्ट के एक अच्छे बैरिस्टर शमशुल हुदा साहब के पास काम करते हुए वकालत की तैयारी में लग गए थे। उनके सभी मुकदमों का सारांश नोट तैयार कर देते। उस मुकदमे में कानून की पुस्तकों से नजीर उत्तर दिया करते। उसके अनुसार बहस के लिए मुद्दा तैयार कर देते। फिर उनके साथ हाईकोर्ट जाकर उनकी बहस सुनते। दूसरे वकील-बैरिस्टरों की बहस को भी सुनकर कानून का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते। दिन-भर परिश्रम के बाद रात को लॉ कालेज में पढ़ते। लॉ कालेज का परीक्षा परिणाम उनका ऐसा रहा कि वह कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम०एल० की परीक्षा में भी सर्वप्रथम आए।

कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत शुरू करते ही मुकदमे मिलने लगे। प्रायः सभी मुकदमे गरीब मुवक्किलों के ही आते थे। शुरू से ही राजेन्द्र प्रसाद जिस मुकदमे को अपने हाथ में लेते उसमें दूसरा सीनियर या जूनियर वकील नहीं होता था। इसलिए उस मुकदमे का सारा काम वे स्वयं करते थे। इस प्रकार मुवक्किलों का काम कम खर्च में ही हो जाता था। शुरू से ही मुकदमे की बहस में हाईकोर्ट के जजों से जान पहचान हो गई। राजेन्द्र प्रसाद ने जिस समय कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत शुरू की, उस समय वहां के मुख्य न्यायाधीश सर लौरेन्स जैन्किन्स थे। वकालत शुरू होने के डेढ़ साल के बाद उन्होंने अवकाश ग्रहण कर लिया। उसी डेढ़ साल में राजेन्द्र प्रसाद की बहस से वे इतने प्रसन्न थे कि जाते समय उनको अपने घर पर बुलाकर अपने हस्ताक्षर के साथ फोटो दे गए। उसके बाद सर आशुतोष मुखर्जी वहां के मुख्य न्यायाधीश हुए।

राजेन्द्र प्रसाद सर आशुतोष मुखर्जी की कोर्ट में एक दिन बहस कर रहे थे। सर आशुतोष मुखर्जी इनकी बहस सुनकर बहुत प्रभावित हुए। कोर्ट समाप्त होने पर उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद को अपने घर बुलाया। इस घटना के सम्बन्ध में राजेन्द्र प्रसाद यों कहते हैं, "जब मेरी बुलाहट हुई तो पहले घबराया। सोचा, आज उनकी कोर्ट में बहस के समय कोई अनियमित बात हो गई।" मुख्य न्यायाधीश सर आशुतोष मुखर्जी केवल जज ही नहीं थे, देश के प्रसिद्ध पुरुष थे। इनका किसी जूनियर वकील को अपने घर पर बुलाना एक असाधारण घटना थी। अतः वे घबराहट और अनिश्चित भाव में गए। न्यायमूर्ति सर आशुतोष मुखर्जी स्नेहपूर्वक मिले। राजेन्द्र प्रसाद को कोर्ट में
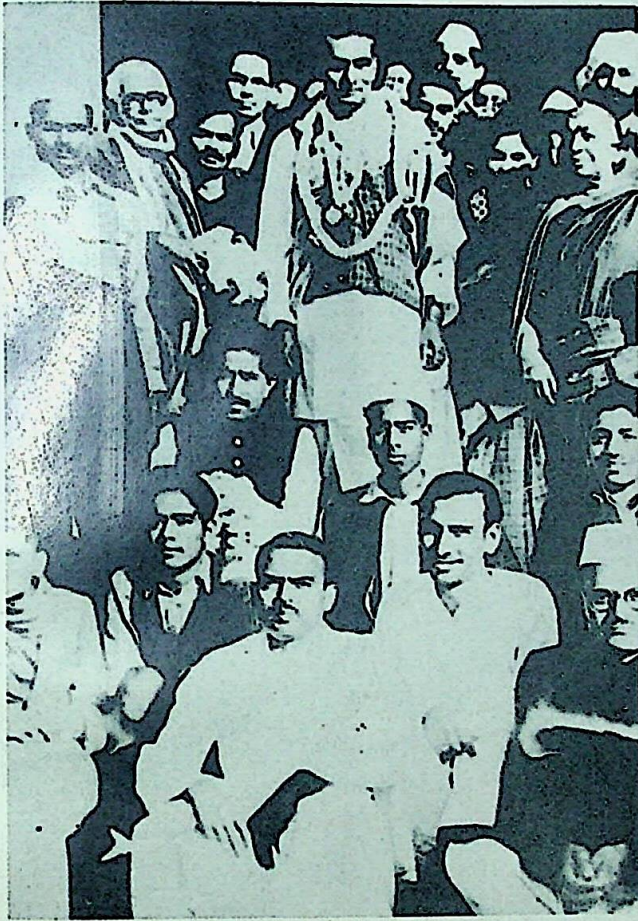
अपने जन्म दिवस के अवसर पर प्रशंसकों से घिरे हुए राजेन्द्र बाबू (यह चित्र तब लिया गया था जब वह भारत के खाद्य मंत्री थे।)

राजेन्द्र बाबू पंडित नेहरू और भूलाभाई देसाई से विचार-विमर्श करते हुए
(यह चित्र आजादी से पहले का है)
↓
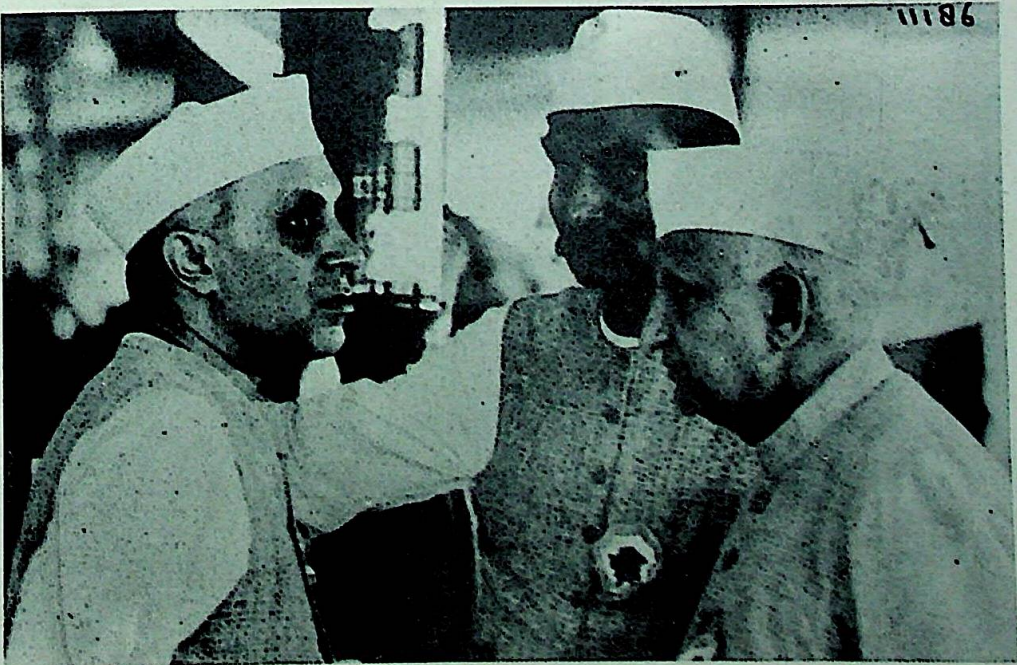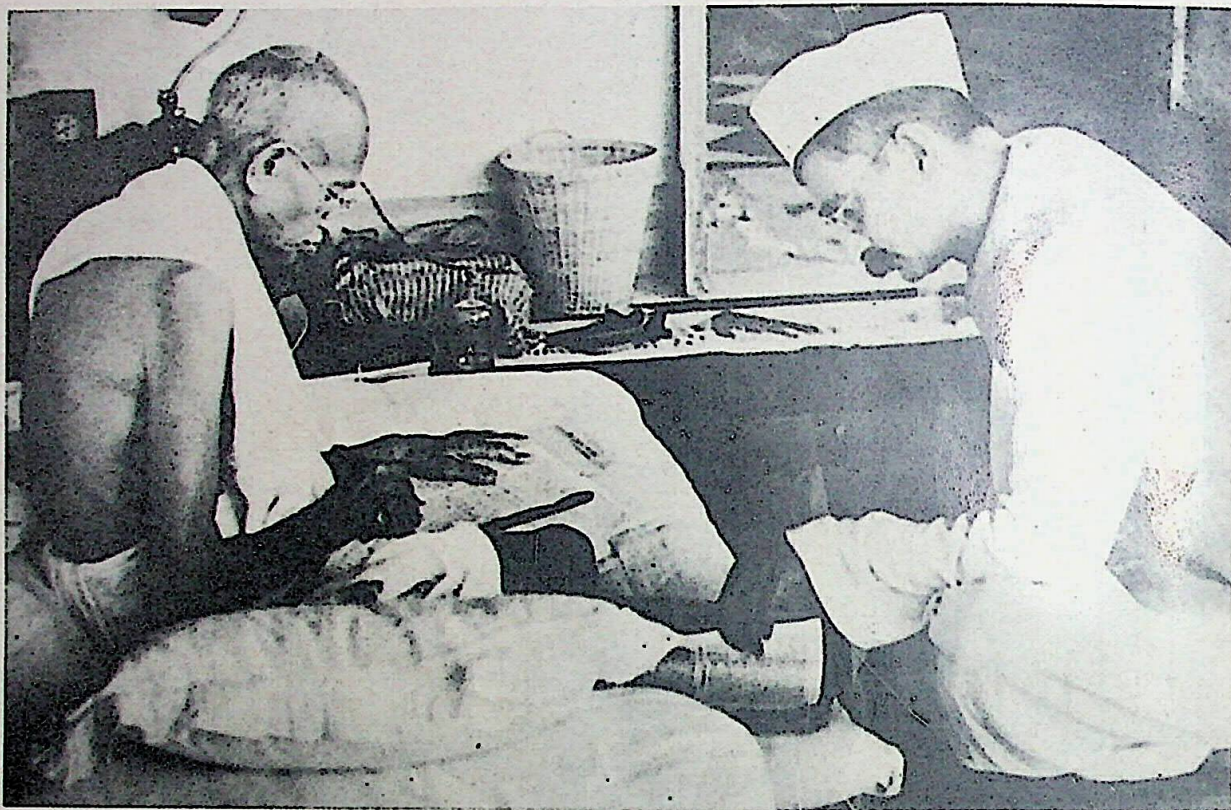
कांग्रेस अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपिता गांधी से विचार-विमर्श करते हुए

स्वतंत्र भारत का प्रथम मन्त्रिमंडल
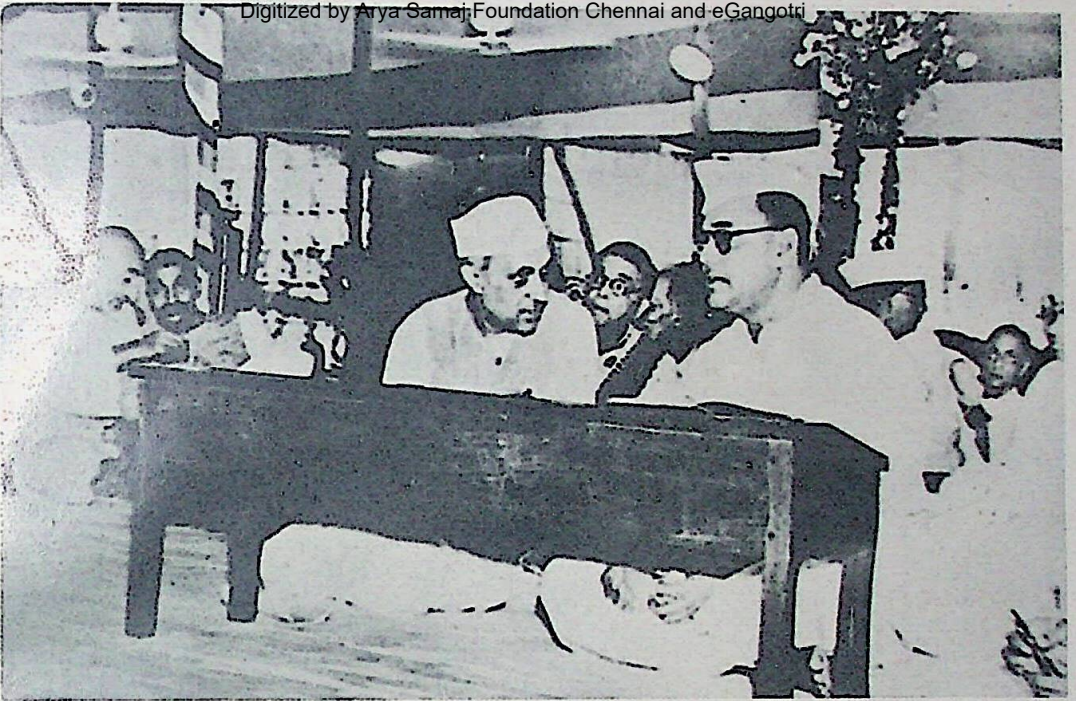
लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ मंच पर सुभाषचन्द्र बोस, राजेन्द्र प्रसाद और खान अब्दुल गफ्फार खां

राजेन्द्र बाबू जवाहरलाल जी के साथ विनोदपूर्ण मुद्रा में
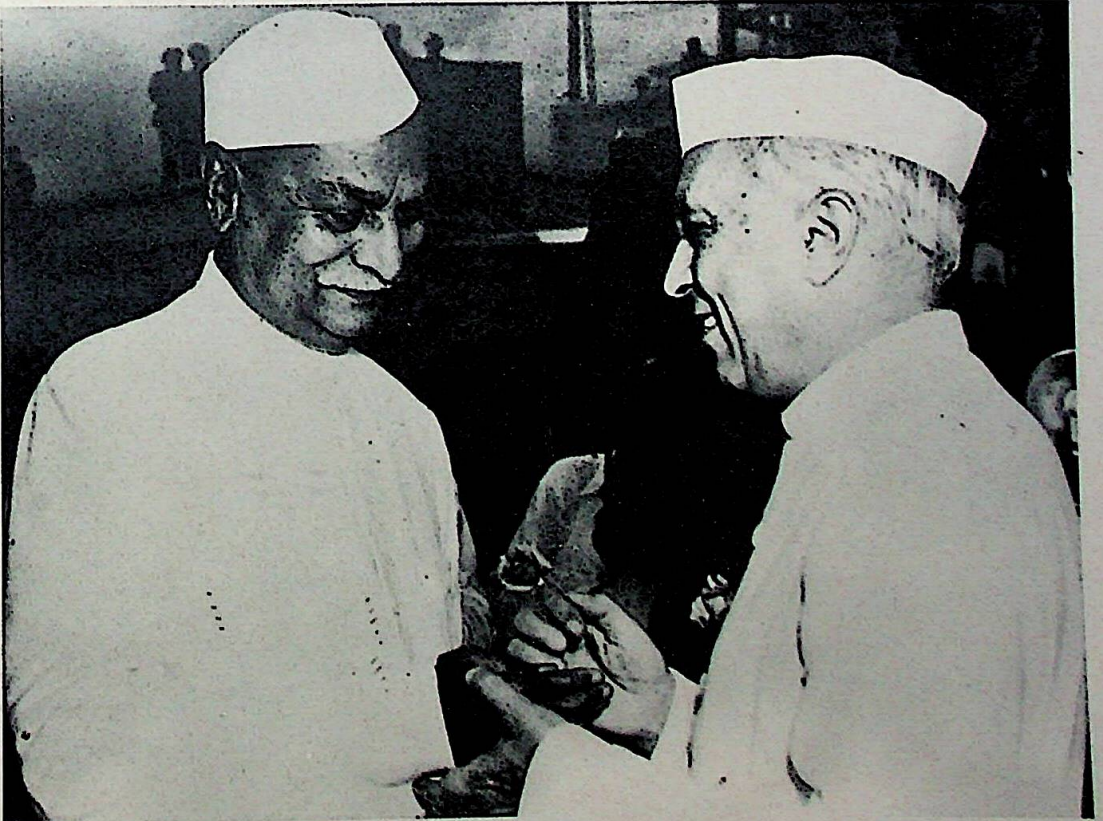
रामगढ़ कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद के साथ राजेन्द्र बाबू और आचार्य कृपालानी

आजादी की लड़ाई के दौरान प्रसिद्ध बिहपुर सत्याग्रह में पुलिस की लाठियों से घायल सत्याग्रहियों के साथ डा० राजेन्द्र प्रसाद
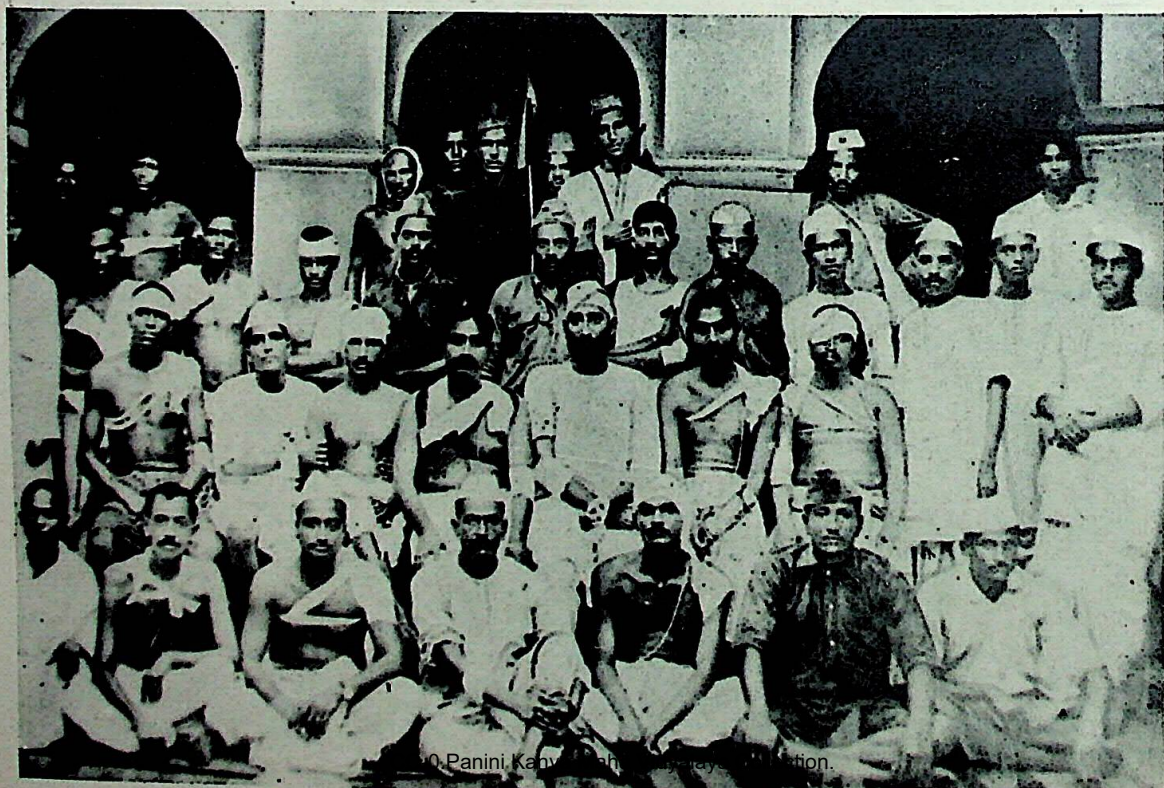
की गई बहस के लिए बधाई दी। पूछा- कितने दिनों से कोर्ट में काम करने लगे हो? कहां रहते हो? इस पेशे में नया-नया आने पर कैसा लगा, इत्यादि। परिचयात्मक बातचीत के बाद मुख्य न्यायाधीश मुखर्जी ने कहा— "मैं तुम्हारी बहस से बहुत प्रभावित हुआ हूँ। यों तो तुम्हारा नाम पहले सुना था। तुम्हारी चर्चा एण्ट्रेंस की परीक्षा में सर्वप्रथम आने में हुई थी। अब तक तुमसे प्रत्यक्ष मिलने का मौका नहीं आया था। बहस सुनने पर लगा कि तुम अच्छी तरह तैयार होकर कोर्ट आते हो। एक खास उद्देश्य से तुम्हें बुलाया है। तुमसे जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे पास समय हो तो लॉ कालेज में पढ़ाने के लिए समय दो।" राजेन्द्र प्रसाद उनकी यह बात सुनकर कुछ आश्चर्य और कुछ असमंजस में पड़ गए। तुरन्त हां या ना में जवाब देते न बना। कुछ देर ऊहापोह में रहने के बाद कहा—बाद में सोच कर कहूँगा। मुझे इसके लिए अपने भाई से पूछना पड़ेगा। निवास स्थान पर लौटकर अपने बड़े भाई से मुख्य न्यायाधीश की बुलाहट का कारण बताया। बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद ने कहा, तुमको यह काम स्वीकार कर लेना चाहिए। दूसरे दिन अपनी स्वीकृति भेज दी। इस प्रकार वह लॉ कालेज के प्रोफेसर हो गए।

गांधीजी के आह्वान पर भरी-पूरी वकालत को लात मारने के बाद भी संयोग से राजेन्द्र प्रसाद एकमात्र जमींदार बाबू हरि जी के मुकदमे में शुरू से अन्त तक काम करते रहे। डुमरांव महाराज के साथ हरि जी के मुकदमे को लेकर राजेन्द्र प्रसाद लन्दन प्रिवी कौंसिल भी गए। बाबू हरि जी राजेन्द्र प्रसाद की प्रतिभा के बहुत कायल थे। इसलिए उन्होंने इनसे यह वचन ले लिया था कि वे वकालत छोड़ भी देंगे तब भी जहां-तहां और जब-तब उनके मुकदमें में काम कर दिया करेंगे। उसी वचन को पूरा करने के लिए वे 1928 में लन्दन प्रिवी कौंसिल में वकालत के काम से गए थे। लन्दन में इनकी तरफ से वहां के दो सीनियर बैरिस्टरों में एक श्री लस्कर और दूसरे श्री अपजौन थे। दोनों ने राजेन्द्र प्रसाद की बुद्धि और तैयार किए गए नोट की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उस मुकदमें में पन्द्रह हज़ार पेज के कागज़ तैयार छपे थे। राजेन्द्र प्रसाद को प्रत्येक पृष्ठ की बात याद थी। वहां के बैरिस्टर जिस बात को जानना चाहते तो तुरन्त उनको दिखा दिया करते थे। भारत का एक मामूली वेश-भूषा का आदमी अंग्रेजी और कानून में ऐसी योग्यता रखने वाला भी हो सकता है, इस बात ने उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया। जब उनको यह मालूम हुआ कि इस वकील ने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में अपनी वकालत छोड़ दी है है, तब और भी आश्चर्य हुआ। लंदन के दोनों सीनियर बैरिस्टर कहने लगे-गांधीजी को अपने देश की आजादी के लिए असहयोग आन्दोलन अच्छा मालूम पड़ता है। आप देश की आज़ादी के लिए उस आन्दोलन में शरीक हुए हैं, यह भी ठीक है, पर, गांधीजी ने आप जैसे प्रतिभावान वकील से वकालत छुड़वाकर वकालत के पेशे को जबरदस्त धक्का पहुंचाया है। आपको इसी पेशे में रहना चाहिए। इस काम में रहकर भी देश की अच्छी सेवा कर सकते थे। क्या फिर इस पेशे में आ सकते हो? राजेन्द्र प्रसाद ने इसके उत्तर में 'ना' कहकर इस मुकदमे के काम के लिए वचन देने की पूरी कहानी सुना दी।

6. गांधीजी के सम्पर्क में

भारत के महापुरुषों के जीवन से यह नतीजा निकलता है कि उनके जीवन में जीवन क्रम की लीक बदलने में संयोग का बहुत हाथ रहा है। संयोग की ही बात है कि जिस गोखले के प्रभाव से गांधीजी प्रभावित हुए और उनको गुरु मान बैठे, वही गोखले 1910 ई० में राजेन्द्र प्रसाद की जीवन दिशा को मोड़ने में निमित्त बने।

थोड़े समय के बाद 1912 में बिहार प्रान्त बंगाल से अलग किया गया। मार्च 1916 में पटना हाईकोर्ट के खुल जाने पर राजेन्द्र प्रसाद पटना चले आए। यहां वकालत कम और सार्वजनिक काम में भाग लेने का अधिक मौका आ गया। पटना आने के एक वर्ष बाद ही राजेन्द्र प्रसाद गांधीजी के विश्वसनीय साथी और सहयोगी बन गए। चम्पारण के काम से ही गांधीजी ने भारत में सत्याग्रह का आन्दोलन प्रारंभ किया। गांधीजी चम्पारण जाने से पूर्व सर्वप्रथम राजेन्द्र प्रसाद के पटना डेरे पर आए। चम्पारण के काम में उनको साथी-सहयोगी बनने का निमंत्रण दिया। इस मिलन और निमंत्रण से राजेन्द्र प्रसाद को महात्मा गांधी के साथ चम्पारण के पीड़ित किसानों के लिए आत्मोत्सर्ग करने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। चम्पारण के काम में राजेन्द्र प्रसाद गांधीजी के सहयोगी बने। गांधीजी ने राजेन्द्र प्रसाद से दो बातें कहीं। पहली, गांधी जेल चला जाए तो चम्पारण के काम को बन्द मत करना, और दूसरी, चम्पारण के काम को मैं बहुत महत्व देता हूं। चम्पारण के काम में जो सफलता मिलने वाली है वही सफलता सारे देश में अंग्रेजी सत्ता से मुक्ति दिलाने के रूप में मिलेगी। फिर उसके बाद ही सम्पूर्ण देश में अंग्रेजी सत्ता से मुक्ति के लिए जो काम गांधीजी ने किया, उसी का नतीजा था कि 29 वर्षों के बाद (1947 में) सम्पूर्ण भारत से अंग्रेज अपनी सत्ता और झण्डा स्वयं उखाड़ते हुए इंग्लैण्ड वापस चले गए। गांधीजी की चम्पारण-विजय में उनके साथी थे राजेन्द्र प्रसाद। उसी समय से भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के लिए राजेन्द्र प्रसाद ने सर्वस्व न्यौछावर किया। राजेन्द्र प्रसाद का कहना था कि उनको गांधीजी से कई बातों की सीख मिली, जिससे उनको गांधीजी की दूरदर्शिता में, कार्य परायणता में, दृढ़ता में, उनकी कार्य-पद्धति से उनकी शक्ति तथा नेतृत्व में बहुत विश्वास हो गया। गांधीजी के साथ जैसे-जैसे राजेन्द्र प्रसाद को काम करने का मौका मिला, वैसे-वैसे उनके प्रति श्रद्धा बढ़ती गई, विश्वास जमता गया। सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह की महिमा को समझते गए। राजेन्द्र प्रसाद कहा करते थे कि गांधीजी ने साधन और साध्य का चुनाव ही कुछ ऐसा किया था जिससे सार्वजनिक जीवन में उनके साथ काम करने वाले लोगों को चारित्रिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक

बल मिलता था। उनकी सारी प्रवृत्तियों में सत्य जुड़ा हुआ रहता था। सत्य को वे ईश्वर से अलग नहीं मानते थे। किसी काम के लिए असत्य का कदापि सहारा नहीं लेते थे। किसी काम को पूरा करने के लिए जिन दो शक्तियों का उपयोग करते थे, वे थीं, सत्य और अहिंसा। इसे काम में लाने के लिए गांधीजी में कार्यकर्त्ता चुनने की शक्ति का परिचय सबसे पहले राजेन्द्र प्रसाद को चंपारण में मिला। गांधीजी में काम करने का एक जादूगर का सा अद्भुत ढंग था। गांधीजी का जीवन अविभाज्य और सम्पूर्ण था। उनकी सारी प्रवृत्तियां एक दूसरे में गुंथी हुई थीं। ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध उनके शान्तिपूर्ण विद्रोह में भी उनकी गहरी नैतिक भावना ही थी। उन्हें यह देखकर गहरा आघात लगा था कि भारतवासी ब्रिटिश शासन के बुरे असर से इतने ज्यादा पतित हो गए हैं कि जो अनुभव करते हैं,उसे कह भी नहीं सकते। गुलामी का कायरतापूर्ण जीवन एक जीता-जागता असत्य तथा ईश्वर से इन्कार जैसा बन गया था। चम्पारण का काम हाथ में लेते ही उनको यह अनुभव हुआ था।

गांधीजी अपने साथ काम करने वाले कार्यकर्ताओं को इसी प्रकार की सीख-साहस देते थे। गांधीजी के काम करने की पद्धति में छिपाव, दुराव अथवा असत्य का स्थान नहीं था। इसी तरीके से उन्होंने देश को जगाया, बढ़ाया और स्वराज्य पाने योग्य बनाया। राजेन्द्र प्रसाद का कहना था कि गांधीजी की राजनीति, सेवा की राजनीति थी। उसमें घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, होड़, प्रलोभन नहीं, बल्कि प्रेम, भाई-चारे और उदार सेवक बनने की शिक्षा थी। हम सबको गांधीजी ने लड़ाकू नहीं, नैतिक बल का प्रबल सिपाही बनाया।

सार्वजनिक सेवा करने वाले सेवकों को कैसा होना चाहिए, उनमें सेवा के कौन-कौन से गुण होने चाहिए, यह भी गांधीजी ने काम करते समय उनको बताया। राजेन्द्र प्रसाद ने गांधीजी के साथ काम करते-करते सेवा का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। जन सेवा और उसके सेवक बनने का प्रशिक्षण, कठिन साधना और तपस्या का है। यह प्रशिक्षण व्यय साध्य नहीं, पर समय साध्य है। सेवा के जितने भी क्षेत्र हैं चाहे वह प्रशासनिक सेवा का हो, अथवा डाक्टरी, इंजीनियरिंग, अध्यापक या आचार्य का, इन सब कामों के पीछे जो प्रशिक्षण है, उससे कहीं अधिक श्रम तथा साधना की दरकार जन-सेवा के प्रशिक्षण में होती है। इस प्रकार की शिक्षा और प्रशिक्षण के बाद देश-सेवा के काम में जो आए उन्होंने देश तथा समाज की अच्छी सेवा की। देश ने भी उन पर पूरा भरोसा किया। राजेन्द्र प्रसाद बापू के कदमों पर चले। बड़े से बड़े काम को छोटे से छोटे पैमाने पर कैसे शुरू किया जाता है, उसमें बड़ी सी बड़ी सफलता कैसे प्राप्त की जा सकती है, वह उन्होंने गांधीजी से सीखा। गांधीजी के साथ चम्पारण में काम करते समय ही उनके सारे सिद्धान्त, विचार और काम करने तथा दूसरे से काम लेने की पद्धति को उन्होंने आत्मसात कर लिया था। गरीब की तरह रहकर गरीबों की सेवा कैसे की जा सकती है, इसे गांधीजी ने सिखाया। गांधीवाद जिसे राजेन्द्र प्रसाद ने अपनाया, उसके मूल को उन्होंने चम्पारण के काम से सीखा। चम्पारण से ही राजेन्द्र प्रसाद का आश्रमी जीवन प्रारम्भ हुआ। आश्रम की प्रार्थना में शरीक होना, 6 बजे तक अपने सभी कामों से निवृत्त होना इसकी आदत उन्होंने डाली। राजेन्द्र प्रसाद अपनी आत्मकथा में लिखते हैं: "हम लोग 6 बजे तक अपने सभी कामों से निवृत्त हो कर बयान लिखने लगते। दिन के ग्यारह बजे तक लिखते। फिर भोजन और आराम के बाद एक-डेढ़ बजे से 5 बजे तक बयान लेते। फिर संध्या का भोजन करते और गांधीजी के साथ टहलने निकल

जाते। बीच में जब कोई ऐसा बयान आता जिसे गांधीजी को बताना जरूरी समझा जाता तो वह तुरन्त कह दिया जाता, अन्यथा बयान लिख-लिख कर देते जाते और वे पढ़ते जाते। इस प्रकार प्रायः पच्चीस हजार रैयतों के बयान गांधीजी को दिए गए। जो अदालत के नाम से डरते थे, वे गांधीजी के पास आकर अपना दुख बताने लगे। उन लोगों के सीधे-सादे हृदय पर न मालूम कहां से यह अमिट छाप पड़ गई कि उनका उद्धारक आ गया है और अब उनका दुख दूर हो जाएगा।"

आगे लिखते हैं: "चम्पारण में ही दीनबन्धु एण्ड्र्यूज से उनकी पहली मुलाकात हुई। इस तरह का अंग्रेज जो बेतरतीब़ कपड़े पहने हो, जो इक्के पर चढ़ता हो, हिन्दुस्तानियों से खुलकर मिलता-जुलता हो, हमने अपने होश में नहीं देखा था। यह भी सुना था कि वह एक प्रतिष्ठित आदमी है जिसकी पहचान वाइसराय से है और जो दुनिया भर में चक्कर लगाया करता है। उस समय उनसे मुलाकात हुई। उनकी सादगी और सच्चाई की जो छाप पड़ी,वह दिन-दिन गहरी होती गई। मेरे साथ तो मानो उनका एक प्रकार बन्धुत्व स्थापित हो गया जो उनके मरते समय तक चला।"

एक दिन राजेन्द्र प्रसाद कुएं पर स्वयं पानी भर रहे थे। अपने कपड़े में साबुन लगाकर साफ कर रहे थे। गांधीजी ने देखा और मज़ाक में कहा—आखिर मैंने पटना हाईकोर्ट के वकील से कपड़ा साफ करा लिया। उसी समय गांधीजी ने यह भी कहा था कि मेरे यहां काम करने में उसकी सफलता का यह बहुत बड़ा चिन्ह मिल रहा है। अब हम लोग यहां से कामयाब होकर जाएंगे। जिस समय चम्पारण के किसानों को उनकी गुलामी से मुक्ति दिलाने का काम चल रहा था, उसी समय गुजरात में वल्लभभाई पटेल द्वारा बारडोली के किसानों की मालगुजारी को लेकर आन्दोलन चला। राजेन्द्र प्रसाद वहां भी गए। इस सम्बन्ध में वल्लभभाई पटेल ने लिखा,"सन् 1918 के खेड़ा सत्याग्रह की लड़ाई के दिनों में राजेन्द्र बाबू से पहली बार मिलना हुआ था। उसी समय से उनके प्रति मेरे दिल में जो आकर्षण उत्पन्न हुआ और हम दोनों के बीच प्रेम की जो गांठ बंधी,वह अब तक बंधी हुई है। राजेन्द्र बाबू को देखते ही उनकी सरलता और नम्रता की छाप हमारे दिल पर पड़ती है।"

1905 में बंग-भंग के जमाने से ही राजेन्द्र बाबू पर देश-भक्ति का रंग चढ़ने लगा था। उसी समय से वे अपने जीवन में इस ओर क्रमशः आगे ही बढ़ते गए। 1917 में चम्पारण की लड़ाई के समय उन्होंने गांधीजी के कदमों पर चलकर फकीरी अपनाई। उसके बाद उनकी आत्मकथा हमारे देश के पिछले तीस वर्षों के सार्वजनिक जीवन का इतिहास बन जाती है।

गांधीजी के शब्दों में-राजेन्द्र बाबू का त्याग हमारे देश के लिए गौरव की वस्तु है। नेतृत्व के लिए इन्हीं के समान आचरण चाहिए। राजेन्द्र बाबू का जैसा नम्रतापूर्ण व्यवहार है और स्वभाव है, वैसा कहीं भी किसी भी नेता का नहीं है।

चम्पारण से लौटने के बाद राजेन्द्र प्रसाद के जीवन में एक बहुत बड़ा मोड़ आया। इस सम्बन्ध में वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—"चम्पारण ने हमारे जीवन पर भी बहुत बडा असर डाला। वहीं हम लोगों ने जाति-पांति का भेद छोड़ा। जिन्दगी में सादगी भी बहुत आ गई। हम लोगों के साथ नौकर थे। वे सब एक-एक कर हटा दिए गए। अपने हाथों से कुएं से पानी भर लेना, नहाना, कपड़े साफ कर लेना, अपने जूठे बर्तन धोना, रसोईघर में तरकारी बनाना, चावल धोना इत्यादि सब काम हम खुद किया करते।

कहीं जाना होता तो तीसरे दर्जे में सफर करना और जहां तक हो सके,पैदल चलना-सब कुछ वहां हमने गांधीजी से सीखा। आराम का जीवन छोड़ देना पड़ा। व्यक्तिगत जीवन से सार्वजनिक जीवन में आने के लिए यह सब बहुत जरूरी था।

चम्पारण में सत्याग्रह का वही रूप था, जो गांधीजी ने थोड़े दिनों के बाद असहयोग द्वारा देशव्यापी पैमाने पर किया। एक जिले का दु:ख दूर करने में प्राय: एक बरस लग गया था। सम्पूर्ण भारत को आजाद करने में उसी अनुपात से जो समय लगना चाहिए था, वही लगा।

गांधीजी के चम्पारण जाने के बाद बिहार का नाम भारत के नक्शे पर चढ़ा। कांग्रेस तथा जहां-तहां सार्वजनिक सेवा के रूप में बिहार का नाम आने लगा। बिहार का नाम गांधीजी के नाम के साथ जुड़ गया। इसलिए कलकत्ते में कांग्रेस अधिवेशन के समय बिहार के अधिकतर प्रतिनिधियों को गांधीजी की छावनी में ठहरना पड़ा। वहां सेठ जमनालाल बजाज का प्रबन्ध था। सेठजी से राजेन्द्र प्रसाद की यह पहली मुलाकात थी। उसके बाद राजेन्द्र प्रसाद से सेठजी का निकटतम सम्बन्ध जीवन भर बना रहा।

7. असहयोग आन्दोलन

चम्पारण में राजेन्द्र प्रसाद के काम और स्वभाव से गांधीजी बहुत प्रभावित हुए। उन्हीं दिनों गांधीजी के नेतृत्व में रॉलट-बिल के विरुद्ध आन्दोलन हुआ। उसी समय गांधीजी ने 'यंग इंडिया' का प्रकाशन प्रारंभ किया। उसी के माध्यम से वे अहिंसात्मक सत्याग्रह की आत्मा को प्रतिध्वनित करते रहे। उसी सिलसिले में गांधीजी अहमदाबाद से महादेव भाई के साथ दिल्ली आ रहे थे। रास्ते में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। महादेव भाई ने राजेन्द्र प्रसाद को तार भेजकर अहमदाबाद आने को कहा। राजेन्द्र प्रसाद बम्बई होते हुए अहमदाबाद पहुंचे। तब तक गांधीजी छोड़ दिए गए। गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद महादेव भाई ने राजेन्द्र प्रसाद को इसलिए बुलाया था कि सत्याग्रह संचालन का भार उन्हें उठाने को कहा जाए। गांधीजी का सत्याग्रह एक पर्व था। यानी कि अहिंसा का पालन करते हुए सरकार के ऐसे कानून को न मानना, जिन्हें तोड़ने की आज्ञा एक मनोनीत कमेटी देती थी। यह कमेटी गांधीजी द्वारा बनाई गई थी। ऐसी कमेटी में गांधीजी ने राजेन्द्र प्रसाद को रखा। इसके बाद राजेन्द्र प्रसाद गांधीजी के एक के बाद एक सभी आन्दोलनों में उनके साथ रहे।

उस वर्ष देशभर में 6 अप्रैल से 13 अप्रैल तक रॉलट ऐक्ट के खिलाफ सभा, जलूस और हड़तालों का सिलसिला जारी रहा। खिलाफत कमेटियों में देशबन्धु चित्तरंजनदास, श्री जयकर तथा श्री अब्बास तैयब, मौलाना शौकत अली, मौलाना मुहम्मदअली, मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि मुसलमान नेता भी गांधीजी के नेतृत्व में एक साथ जुट गए। इस काम में राजेन्द्र प्रसाद ने बिहार का नेतृत्व संभाल लिया। देशभर में अंग्रेजी राज के विरुद्ध असहयोग करने की यह भूमिका थी।

अप्रैल 1920 में मौलाना शौकत अली पटना आए। राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में वहां बड़ी सभा हुई। इसमें पं० मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरंजनदास भी मौजूद थे। ये दोनों राजेन्द्र प्रसाद के साथ पटना हाईकोर्ट में एक मुकदमे में काम कर रहे थे। उस मुकदमे में एक साथ काम करने की वजह से इन दोनों के साथ राजेन्द्र प्रसाद की घनिष्ठता बढ़ गई थी।

अब तक कांग्रेस ने असहयोग सम्बन्धी अपना फैसला बाज़ाब्ता घोषित नहीं किया था। इसके पूर्व ही राजेन्द्र प्रसाद ने कहा: 'कांग्रेस अगर असहयोग आन्दोलन करने का निश्चय करेगी तो उस निश्चय के अनुसार बिहार में जन असहयोग आन्दोलन किया जाएगा।' राजेन्द्र प्रसाद की वकालत ख्याति प्राप्त

कर चुकी थी। उस समय बैरिस्टर मजहरुल हक साहब बिहार के सबसे बड़े नेता थे। वे कौंसिल में राजेन्द्र प्रसाद को भेजना चाहते थे। पर पटना की सभा में राजेन्द्र प्रसाद असहयोग की घोषणा कर वकालत और कौंसिल दोनों से मुक्त हो गए। पटना की सभा में मौलाना शौकत अली से राजेन्द्र प्रसाद की पहली मुलाकात थी। राजेन्द्र प्रसाद के भाषण से वे बहुत प्रभावित हुए। असहयोग का सूत्रपात अचानक इसी सभा में हुआ।

राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में बिहार प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव अगस्त 1920 में पास किया। इसके बाद सितम्बर 1920 में लाला लाजपतराय के सभापतित्व में कलकत्ता कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। असहयोग के समर्थन में सर्वप्रथम बिहार ने प्रस्ताव पास किया था। प्रस्ताव पास करते ही राजेन्द्र प्रसाद ने वकालत को तिलांजलि देकर कोर्ट-कचहरी जाना बन्द कर दिया। गांधीजी के साथ रहकर उन्होंने सेवा और सादगी का व्रत पहले ही ले लिया था। अब वकालत का चोगा भी उतार फेंका और सादी पोशाक के साथ असहयोग का बाना धरकर वे इस आन्दोलन में कूद पड़े। गांधीजी की पूर्व-परिचित कार्य-पद्धति से राजेन्द्र प्रसाद के नेतृत्व में इस आन्दोलन को बिहार में सफलता मिली। राजेन्द्र प्रसाद के निमंत्रण पर गांधीजी बिहार का दौरा करने आए। उससे इस आन्दोलन की सफलता में चार चांद लग गए।

सरकारी भवनों से निकलकर गांधीजी के सत्य-अहिंसा सत्याग्रह को अंगीकार कर भारत को स्वतंत्र करना असहयोग आन्दोलन की मुख्य भूमिका थी। देश के बड़े से बड़े वकील, बैरिस्टर, प्राध्यापक; डाक्टर, विद्यार्थी, अपने उज्ज्वल भविष्य को भुला बैठे। आराम और आमदनी को छोड़कर उन्होंने फकीरी धारण कर ली। असहयोग का मूल उद्देश्य किसी का नुकसान नहीं,बल्कि अंग्रेजी शासन से मुक्ति प्राप्त करना था। ऐसे अहिंसक उद्देश्य को प्राप्त करने की कार्य-पद्धति भी अहिंसा-मूलक थी।

असहयोग-आन्दोलन में भाग लेने के लिए विद्यार्थियों की एक टोली राजेन्द्र प्रसाद के सामने आई। उसका नेतृत्व जयप्रकाश नारायण कर रहे थे। उस टोली को लेकर राजेन्द्र प्रसाद मौलाना मजहरुल हक से मिलने गए। हक साहब के पास जमीन और बाग था। उसी जमीन और बाग पर बिहार विद्यापीठ की स्थापना की गई। इसमें कालेज की पढ़ाई होने लगी। स्वयं राजेन्द्र प्रसाद उसके प्राचार्य हुए। हिन्दू-मुस्लिम एकता के ख्याल से उस स्थान का नाम सदाकत आश्रम रखा गया। गांधीजी बिहार के दौरे पर आए। उनको साठ हजार की थैली मिली। वह थैली इस विद्यालय के निर्वाह खर्च के लिए राजेन्द्र प्रसाद के सुपुर्द कर दी गई।

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रचार एवं प्रसार के लिए हिन्दी में 'देश' और अंग्रेजी में 'सर्चलाइट' का प्रकाशन प्रारंभ किया गया। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बड़ा बल मिला। पूरे प्रान्त में थाना कांग्रेस कमेटियां और पंचायतें कायम हुईं। कांग्रेस के नये सदस्य बनाए गए। तिलक स्वराज्य फण्ड के लिए रुपये जमा किए गए। चरखे और खादी का काम बढ़ा। हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया गया। बिहार चरखा संघ की स्थापना हुई। बिहार में खादी का काम अधिक बढ़ा। सारे देश में बिहार की खादी को प्रसिद्धि मिली।

गांधीजी के इस रचनात्मक कार्यक्रम से देश में अच्छी जागृति आई। पूरे देश में रचनात्मक काम के लिए एक अलग संस्था बनी। इससे स्वावलम्बी एवं निर्भीक कार्यकर्ता तैयार हुए। राजेन्द्र प्रसाद ने गांधीजी के सारे रचनात्मक काम को बड़ा महत्व दिया। अहिंसा के मार्ग को पकड़ने के लिए यह सुगम रास्ता बना। राजनीतिक क्रान्ति का ध्येय भी इसी को माना गया। रचनात्मक कार्यक्रम से समाज की आर्थिक स्थिति को विकास का पूरा अवसर मिला। खादी को इसी रूप में उन्होंने अपनाया और फैलाया। खादी ग्रामोद्योग के माध्यम से हर हाथ को काम देना और गांव की आवश्यकता को गांववालों से पूरा करवाना, रचनात्मक काम के पीछे मात्र यही उद्देश्य था।

रचनात्मक काम के आर्थिक पहलू पर किसी ने गांधीजी से प्रश्न किया। उनका उत्तर था कि उसकी व्याख्या राजेन्द्र प्रसाद से पूछी जाए। 'रचनात्मक काम और उसकी व्याख्या : खादी का अर्थशास्त्र' नामक पुस्तिका के रूप में राजेन्द्र प्रसाद की व्याख्या छपी।

1921 में राजेन्द्र प्रसाद अ० भा० कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य हुए। 1922 में गया अधिवेशन में राजेन्द्र प्रसाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामंत्री बने। इससे कांग्रेस का प्रधान कार्यालय पटना बन गया। राजेन्द्र प्रसाद ने पूरे देश का भ्रमण किया। कांग्रेस के साथ रचनात्मक संगठन को सभी जगहों पर स्थायित्व प्रदान किया। गांधीजी की गिरफ्तारी के बावजूद भी राजेन्द्र प्रसाद रचनात्मक काम में लगे रहे। सेठ जमनालाल बजाज की सहायता से उन्होंने गांधी सेवा संघ की स्थापना की।
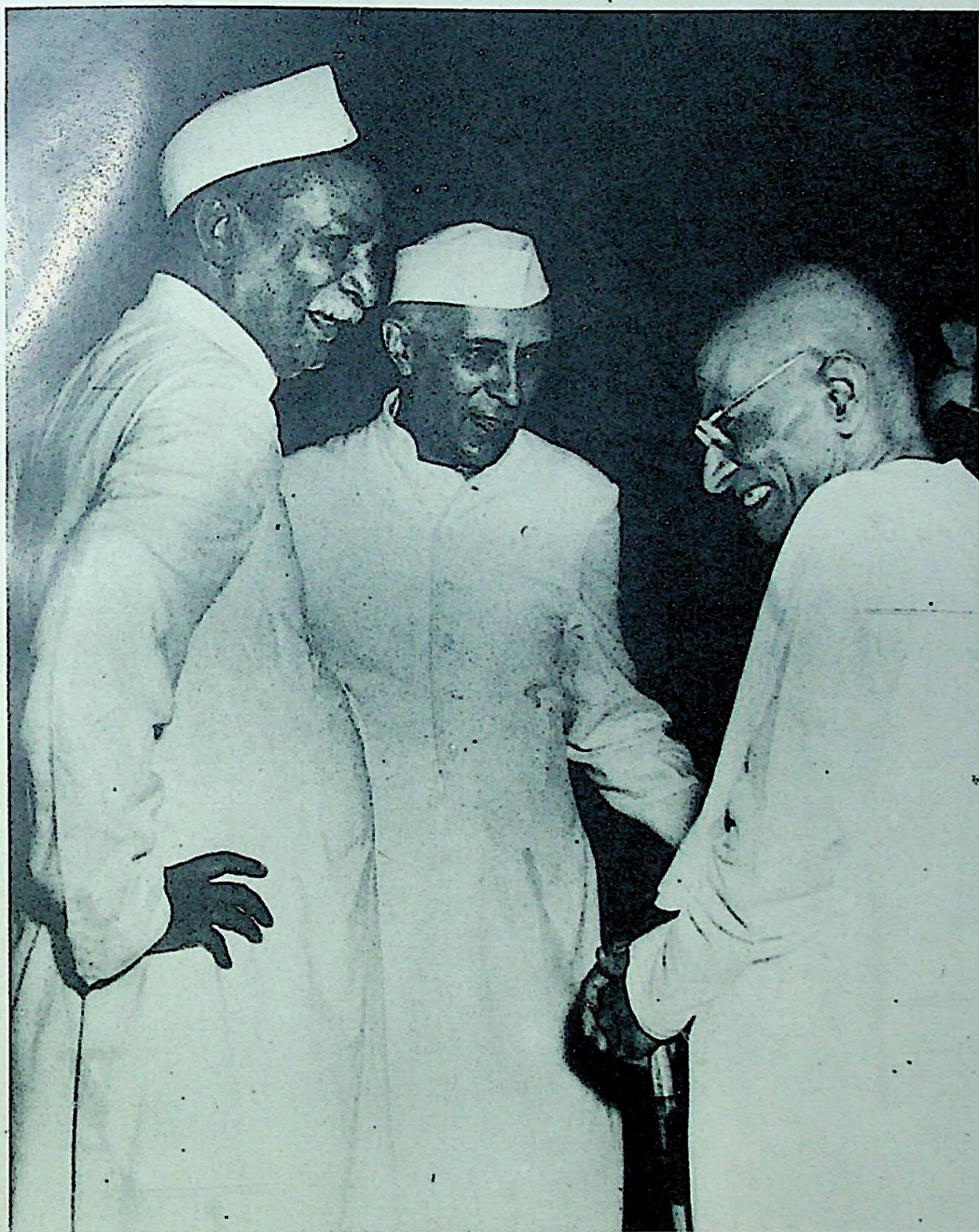
राजेन्द्र बाबू पंडित नेहरू और चक्रवर्ती .राजगोपालाचारी के साथ
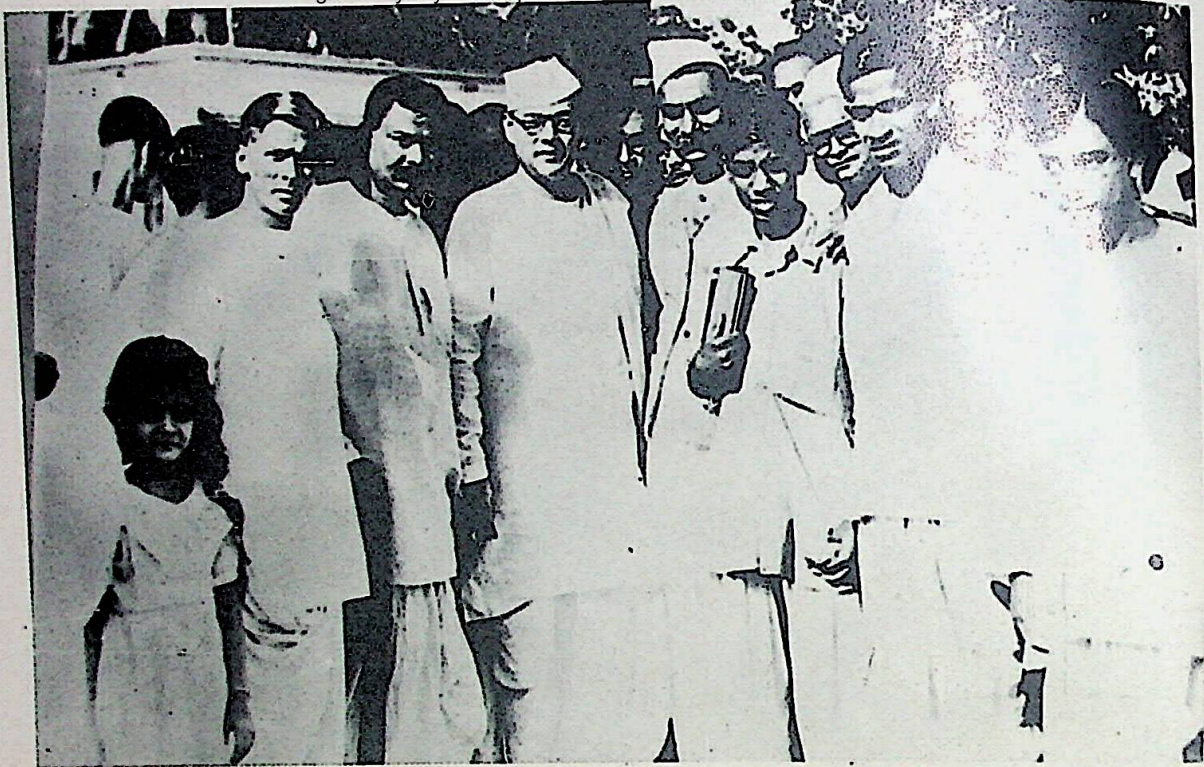
कलकत्ता कांग्रेस (1939) के अवसर पर राजेन्द्र बाबू, सुभाष चन्द्र बोस, मथुराप्रसाद आदि सहकर्मियों के साथ

भारत के अन्तरिम मंत्रिमंडल के सदस्य, प्रधान मंत्री नेहरू के साथ (1946)
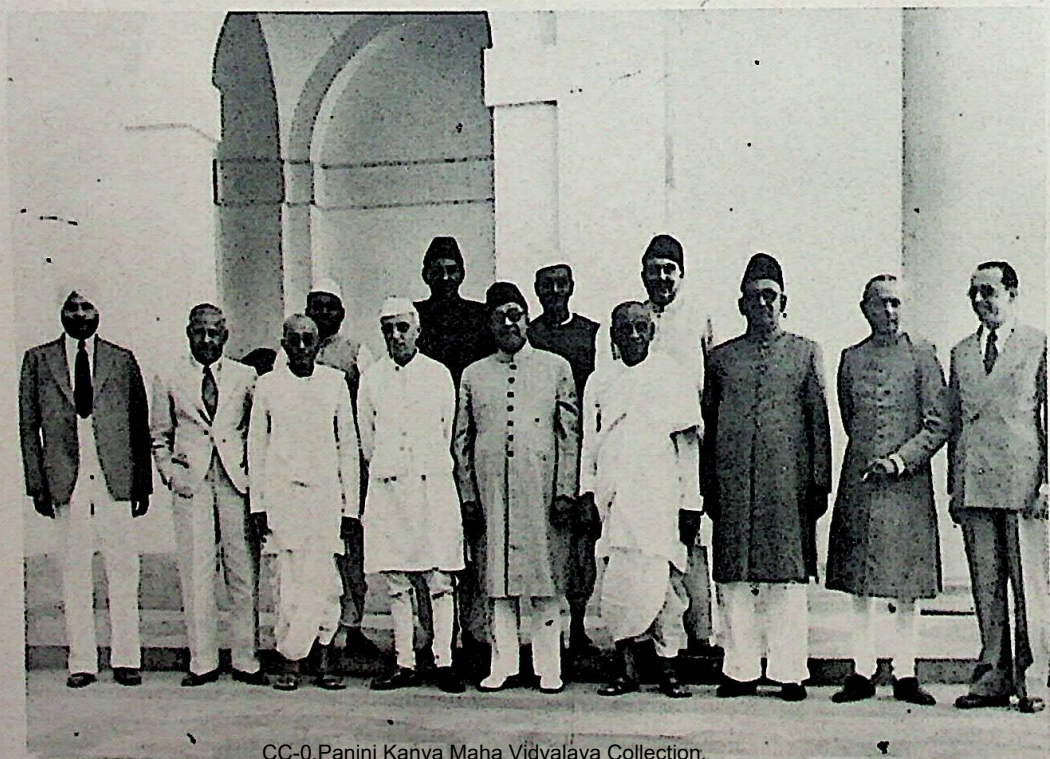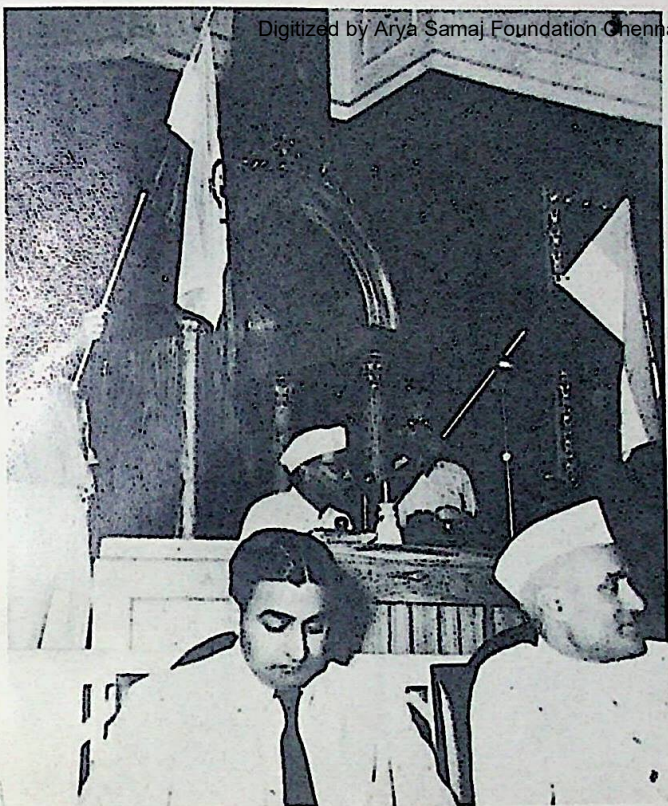
संविधान सभा के समापन अवसर पर अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए राजेन्द्र बाबू (चित्र में निर्धारित राष्ट्रीय ध्वज प्रदर्शित किया जा रहा है।

संविधान-सभा की अध्यक्षता करते हुए राजेन्द्र बाबू।
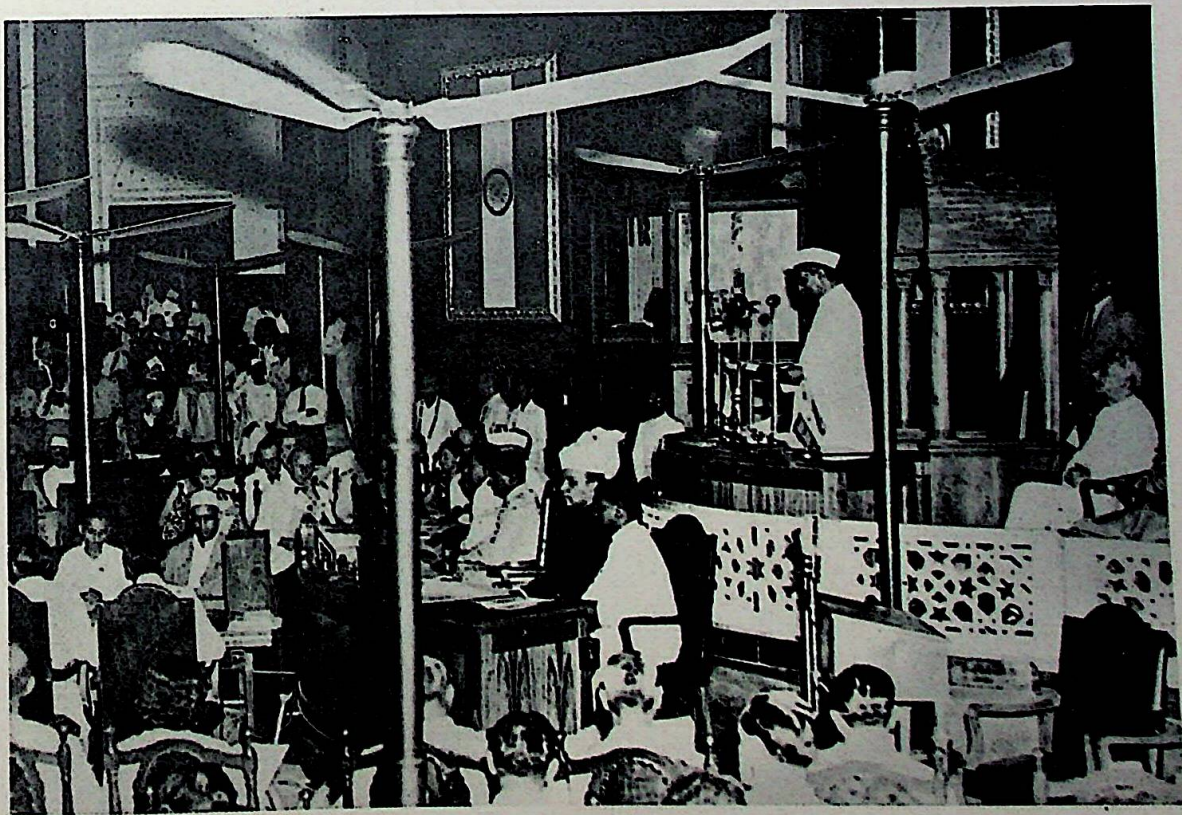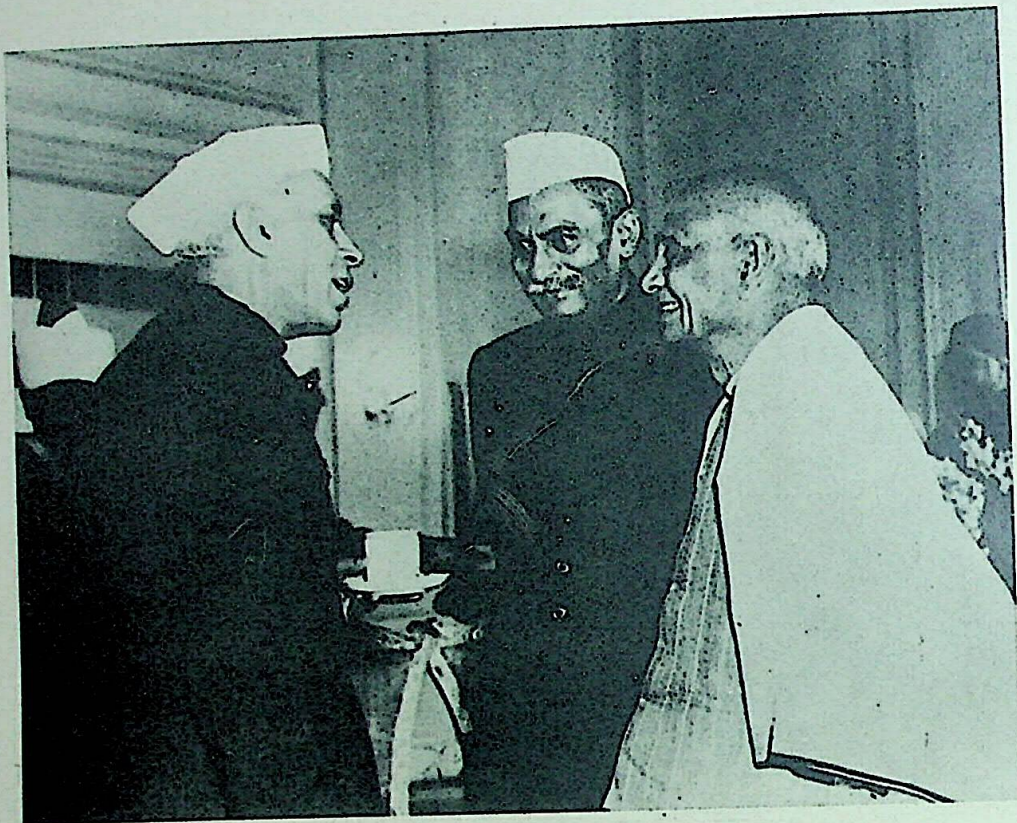
आजाद भारत को सबल नेतृत्व प्रदान करने वाले पंडित नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद और सरदार पटेल
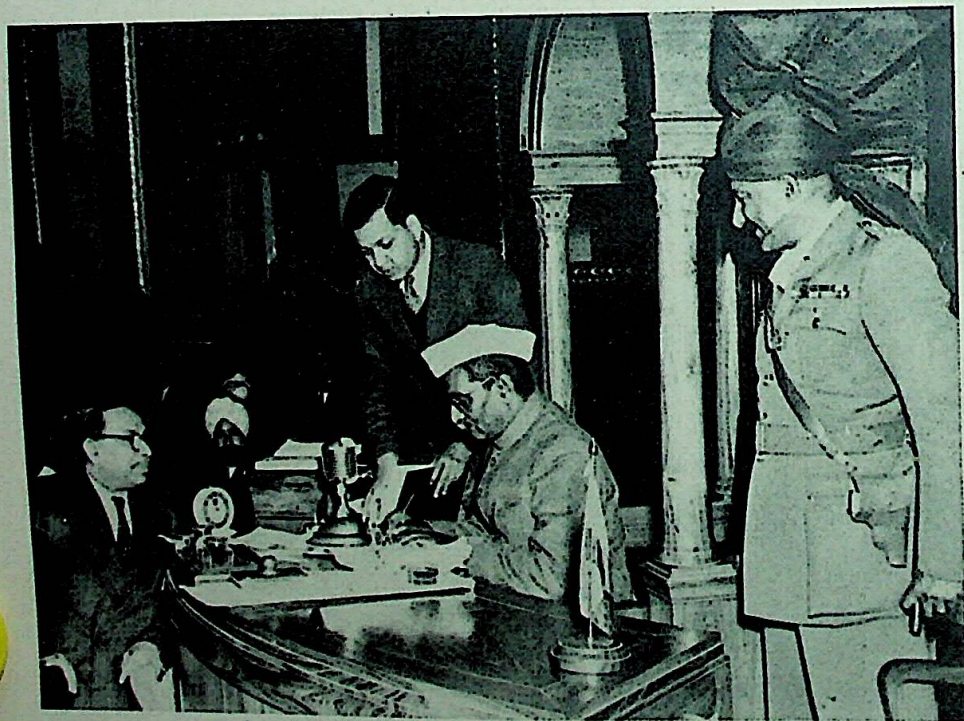
राजेन्द्र बाबू भारत के नव-निर्मित संविधान पर हस्ताक्षर करते हुए

8. रचनात्मक प्रवृत्तियां

तिलक स्वराज्य फण्ड के लिए राजेन्द्र प्रसाद गांधीजी के साथ भ्रमण कर रहे थे। दोनों उड़ीसा पहुंचे। उस समय वहां अकाल पड़ा हुआ था। अकाल पीड़ितों की जो भी सहायता की जा सकती थी, वह की गई। उस समय बिहार तथा उड़ीसा एक प्रान्त के भाग थे। उड़ीसा भ्रमण का जिक्र करते हुए राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है: 'उड़ीसा की ही किसी सभा में महात्मा जी ने बहुत उच्च कोटि का भाषण दिया था। उसका असर आज तक मेरे दिल पर है। सभा में किसी ने महात्माजी से प्रश्न किया कि आप अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध क्यों हैं? अंग्रेजी शिक्षा ने ही तो राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक तथा आपको पैदा किया है। महात्माजी ने उत्तर में कहा कि मैं तो कुछ नहीं हूं, पर लोकमान्य तिलक जो भी हुए हैं, उससे कहीं अधिक बढ़े हुए होते; यदि उनको अंग्रेजी शिक्षा का बोझ ढोना न पड़ा होता। राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक जैसे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त विद्वान भी श्री शंकराचार्य, गुरु नानक, गुरु गोबिन्द सिंह, तुलसी तथा कबीर के मुकाबले में क्या हैं? आज तो सफर और प्रचार के इतने साधन मौजूद हैं, तो भी उन्होंने विचार की दुनिया में कितनी बड़ी क्रान्ति मचा दी थी।' इस सम्बन्ध में राजेन्द्र प्रसाद का विचार था कि अंग्रेजी जानना बुरा नहीं है। उसे हममें से बहुतों को जानना होगा। हम उसे सीखेंगे भी, पर वह शिक्षा का माध्यम और साधन नहीं रह सकती।

1921 में गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद देश के बाकी नेता दो विचारधाराओं में विभक्त हो गए। अपरिवर्तनवादियों का नेतृत्व राजेन्द्र प्रसाद व राजगोपालाचारी करते थे और परिवर्तनवादियों का मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरंजनदास आदि। ऐसी अवस्था में बिहार ही एक ऐसा प्रान्त था जिससे राजेन्द्र प्रसाद के नेतृत्व में बिखराव नहीं आया। वहां परिवर्तनवादी भी राजेन्द्र प्रसाद की सलाह से काम करते थे। इनकी वजह से वहां दोनों दलों के नेता समान रूप से मिलकर काम करते रहे।

राजेन्द्र प्रसाद सहज और सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। तुलसीदास जी ने सहज स्वभाव की व्याख्या इस प्रकार की है: सहज सुभाव छुआछल नाहीं। यह राजेन्द्र प्रसाद पर खरी उतरती थी। कबीरदास जी की यह उक्ति भी उन पर सटीक बैठती थी "सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हे कोई। जिन्ह सहज विषया तजी, सहज कहै सो सोई।" जिस किसी को उनके निकट बैठने का सुअवसर मिला है,

वह उनके सहज और अकृत्रिम व्यवहार से मुग्ध हुआ है। सहज भाव बड़ी कठिन साधना से प्राप्त होता है। सीधी लकीर खींचना बड़ा टेढ़ा काम है। जो सहज मानव होगा वही सहज भाषा बोल और लिख सकता है। जिसका दिमाग उलझा होता है, वह उलझी भाषा बोलता और लिखता है। भाषा तो व्यक्ति के अन्दर का दर्पण है। जिन्होंने राजेन्द्र प्रसाद को बोलते सुना है, वे ही अनुभव कर सकते हैं कि सहज भाषा क्या हो सकती है। उनकी भाषा में उनका हृदय प्रतिबिम्बित होता था। वह सप्रयास और अभ्यास वाली भाषा नहीं होती थी। उससे उनके व्यक्तित्व की सच्चाई की सहज अभिव्यक्ति होती थी। हिन्दी के लिए यह गर्व और गौरव की बात है कि उसमें राजेन्द्र प्रसाद की अनुकरणीय शैली और आन्तरिक सच्चाई की सहज-सरल अभिव्यक्ति हुई है।

राजेन्द्र प्रसाद ने हिन्दी सेवा का काम 1918 में प्रारम्भ किया। इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन गांधीजी के सभापतित्व में हुआ। राजेन्द्र प्रसाद उसमें सम्मिलित हुए। वहीं से वे हिन्दी प्रचार के काम को देखने मद्रास गए। गांधीजी ने हिन्दी प्रचार के काम में अपने पुत्र देवदास को लगाया था। राजेन्द्र प्रसाद ने इस काम की महत्ता को भली भांति समझा। बिहार के दो-तीन हिन्दी कार्यकर्ताओं को मद्रास भेजा। ये लोग आजन्म मद्रास में हिन्दी सेवा के काम में लगे रहे। 1924 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन कोकीनाडा में राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में हुआ। राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा का प्रश्न देश के सामने उभरता रहा है। खासकर हिन्दी और उर्दू को लेकर काफी विवाद रहा है। इस संबंध में राजेन्द्र प्रसाद के स्पष्ट विचार रहे हैं। वे कई बार अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रहे। राष्ट्रभाषा परिषद और हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा तथा हिन्दी प्रचारिणी सभा, मद्रास के अध्यक्ष पदों से उनके स्पष्ट विचार आए हैं। वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं:—"मैंने अपने भाषण का यही विषय रखा और हिन्दी साहित्यसेवियों के विचारार्थ यह प्रश्न उपस्थित किया। मेरा कहना था कि हिन्दी को उदार, सहज और सरल बनाना है। उसमें विदेशी शब्दों के ग्रहण में कोई हिचकिचाहट नहीं है। अर्थात, चाहे वे फारसी या अरबी के हों या अंग्रेजी के, पर जो शब्द हिन्दी में आएं, उन्हें हिन्दी बना लेना चाहिए। अर्थात, वह हिन्दी व्याकरण के अनुशासन के अधीन होकर रह जाएं। मेरा यही विचार बराबर रहा है। उस समय से आज तक इस बात पर बहुत बहस छिड़ी है। पर मैं अपने विचार में अधिक दृढ़ होता गया हूं। केवल इन तीन भाषाओं के ही शब्द नहीं लेने पड़ेंगे, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में ग्रामीण शब्दों को भी अपना लेना पड़ेगा। जो प्रान्तीय भाषाएं हैं, उनकी शब्दावली से भी बहुत शब्द लेने पड़ेंगे।"

राजेन्द्र प्रसाद उस भारत के मूर्तिमान स्वरूप थे, जिसे गांधीजी ने बनाया। राजेन्द्र प्रसाद ने गांधी धर्म को अपने भीतर पूर्णरूप से आत्मसात कर लिया था। गांधीजी ने अपने अवसान के पूर्व वर्धा में भूदान सहित सभी प्रकार के रचनात्मक कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन बुलाया था। विचार था कि इसका संचालन राजेन्द्र प्रसाद करें। राजेन्द्र प्रसाद वर्धा पहुंच गए थे। गांधीजी वहां दूसरे ही दिन जाने वाले थे कि एक दिन पूर्व गांधी परलोकवासी हो गए। परिस्थितियां बदल गईं। इस कारण यह उत्तराधिकार राजेन्द्र प्रसाद के पास बाज़ाब्ता नहीं पहुंचा। वे संविधान सभा के अध्यक्ष हुए। फिर देश ने उन्हें अपना राष्ट्रपति बनाकर राष्ट्रपति भवन में बिठा दिया। तब भी यह सत्य है कि गांधी विचार के सभी रचनात्मक कार्यकर्ता राजेन्द्र प्रसाद को अपना नैतिक संरक्षक मानते थे। हरिजन

सेवक-संघ, हरिजनों के बीच काम करने वाली अन्य स्वयंसेवी संस्थाएं, खादी ग्रामोद्योग के कार्यकर्ता, राजेन्द्र प्रसाद पर अपना नैसर्गिक अधिकार मानते थे। भूदान आन्दोलन के सक्रिय नेता संत विनोबा उन्हें अपना पूज्य सलाहकार मानते थे। राष्ट्रीय एकता, विशेषतः हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए काम करने वाले लोग राजेन्द्र प्रसाद को अपना प्रेरणा-स्रोत समझते थे।

राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में गाय के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है: मैं गौ सेवा को धार्मिक दृष्टि से नहीं फैलाना चाहता। भारत की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर ही इसकी आवश्यकता और उपयोगिता समझता हूं। इस तरह हम इसमें उनकी मदद पा सकते हैं जिनमें इसके लिए वैसी धार्मिक भावना नहीं है जैसी हिन्दुओं, जैनों और सिखों में पाई जाती है। मैं मानता हूं कि यही आर्थिक लाभ और उपयोगिता की भावना कुछ काम कर सकती है और सफल भी हो सकती है। निरी धार्मिक भावना मुसलमानों में द्वेष और हिन्दुओं में आडम्बर तथा उग्र भावना पैदा करती है जिसमें गौ सेवा पीछे रह जाती है और दिखावा मात्र बढ़ जाता है।

राजेन्द्र प्रसाद के चरित्र की एक बड़ी विशेषता यह थी कि हर मामले में उनके विचार सुलझे हुए एवं स्पष्ट थे। विचारों की स्पष्टता से सभी प्रकार के रचनात्मक कार्यों के उद्देश्यों में भी वह सफल हुए। रचनात्मक कार्यों के सम्बन्ध में जहां तक राजेन्द्र प्रसाद का प्रश्न है, यह ध्रुव सत्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गांधीजी की दृष्टि और आशा एकमात्र राजेन्द्र प्रसाद पर केन्द्रित थी, क्योंकि नेहरू, पटेल, पन्त, राजाजी आदि गण्यमान्य और लोकप्रिय नेता तो प्रशासनिक कार्यों में ऐसे व्यस्त हो गए थे कि गांधीजी के रचनात्मक कार्य उनके लिए गौण हो गए। काश, इन रचनात्मक कार्यों को प्रमुखता व प्राथमिकता दी जाती और राजेन्द्र प्रसाद को राष्ट्रपति भवन में कैद करने के बजाय भरपूर सरकारी समर्थन के साथ उनके संचालन और विकास का दायित्व सौंप दिया जाता तो देश की दशा कुछ और ही होती। कम-से-कम गरीब और अमीर के बीच की खाई कुछ हद तक अवश्य भर जाती। यह सब हाथों को काम मिलने पर निर्भर था।

परन्तु इससे यह निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि राजेन्द्र प्रसाद की गतिविधियां केवल कुछ रचनात्मक कार्यों तक ही सीमित थीं, अथवा वे केवल इसी योग्य थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनकी रचनात्मक प्रवृत्तियों की चर्चा तो यह सिद्ध करने के लिए की गई कि ये उनके रचनात्मक दृष्टिकोण की द्योतक हैं, यह दृष्टिकोण उनकी सहजता-सरलता तथा अजातशत्रुता का भी द्योतक है। असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में उन्हें जो कुछ संघर्ष करना पड़ा, उसमें भी उनका यह सकारात्मक दृष्टिकोण काम करता रहा।.

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दरम्यान साइमन कमीशन का भारत भ्रमण एक महत्वपूर्ण घटना थी। देश के प्रमुख स्थानों पर उनका दौरा हुआ। वह जहां गया, उसके स्वागत के साथ-साथ उसका जबरदस्त विरोध भी हुआ। कमीशन का स्वागत करने वालों में जहां सरकारी अफसरों, जमींदारों, ताल्लुकेदारों और राजाओं की टोली रहती थी, वहीं विरोध करने वालों में स्वतंत्रता सेनानी, राष्ट्रीय नेता, आजादी की दीवानी जनता हुआ करती थी। इन दो विरोधी समूहों के बीच टकराव के फलस्वरूप पुलिस की लाठियां चली थीं। इस टकराव में लाला लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू,

जवाहरलाल नेहरू तथा इनके परिवार के सदस्यों को भी काफी चोटें लगीं। इसके फलस्वरूप जनता में उत्तेजना पैदा हुई। इसी उत्तेजना के बीच साइमन कमीशन के पटना पहुंचने का कार्यक्रम बना। राजेन्द्र प्रसाद बिहार के प्रमुख नेता थे। बिहार के पुलिस इन्सपेक्टर जनरल मिस्टर स्वेल चाहते थे कि पंजाब और उत्तर प्रदेश जैसी दुर्घटनाएं यहां न हों। उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद से कहा कि भीड़ इकट्ठी होने से खतरा है। राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि कुछ भी हो, साइमन कमीशन विरोधी (साइमन लौट जाओ) प्रदर्शन रुक नहीं सकता। इसके लिए भीड़ जमा होगी ही। बहुत बहस के बाद मिस्टर स्वेल ने कोई उपाय निकालने को कहा, जिससे मुठभेड़ न हो। सड़क के एक ओर स्वागत करने वाले और दूसरी ओर विरोधी लोग रहें, मुठभेड़ न होने का यह रास्ता राजेन्द्र प्रसाद ने बताया, जिसे मि. स्वेल मान गए। साइमन के पटना उतरते ही उनको मालूम हो गया कि स्वागत करने वाले अहाते में कुल डेढ़ सौ व्यक्ति हैं जबकि दूसरी ओर पच्चीस-तीस हजार प्रदर्शनकारी शान्तिपूर्वक किन्तु अपूर्व उत्साह के साथ विरोध का प्रदर्शन कर रहे हैं। साइमन का चेहरा फक हो गया। उसे पता चल गया कि नौकरशाही कितने पानी में है। प्रदर्शन का उद्देश्य सफल हो गया, पर लाठी न चली, न खून-खराबा हुआ। सांप भी मर गया, लाठी भी न टूटी। राजेन्द्र प्रसाद की नरमी तब की सर्वशक्तिमान सरकार की गरमी से ज्यादा काम कर गई।

राजेन्द्र प्रसाद जुलाई 1930 से 17 जनवरी, 1934 तक प्रायः जेल में ही रहे। 1930 का नमक सत्याग्रह स्वतंत्रता-संग्राम का अनुपम दृश्य था। नमक मिट्टी से बनता है। गरीबों की खुराक में मिट्टी का वह अंशदान महत्व रखता है। इस पर कर लगाना गुलामी का प्रतीक माना गया। गांधीजी ने भारत को इससे छुटकारा दिलाने की घोषणा कर दी। संसार के सामने यह बेमिसाल अहिंसात्मक युद्ध था। बिहार को इस युद्ध में अच्छी सफलता मिली। राजेन्द्र प्रसाद बहिपुर नमक सत्याग्रह में शरीक होने गए। बहिपुर भागलपुर जिले का एक थाना है। पुलिस वहां के कांग्रेस दफ्तर में ताला डाल चुकी थी। स्वतंत्रता सेनानियों को खदेड़ दिया गया था। इस ताले को खुलवाने के लिए जो भी कांग्रेस के कार्यकर्ता वहां जाते, पुलिस उन्हें पीटती और गिरफ्तार कर लेती। इसके विरोध में राजेन्द्र प्रसाद को भी जाना पड़ा। जिस दिन राजेन्द्र प्रसाद वहां पहुंचे, उनके स्वागत में हजारों आदमी स्टेशन पहुंच गए। वे गाड़ी से उतर कर सीधे कांग्रेस दफ्तर की ओर चल पड़े। उनके पीछे-पीछे हजारों आदमी चले। वहां के सरकारी अधिकारी और पुलिस परेशानी में पड़ गई कि किस तरह इस भीड़ को तितर-बितर किया जाए। राजेन्द्र प्रसाद को गिरफ्तार करने का आदेश उनके पास नहीं था। इससे उनकी परेशानी और भी बढ़ी। पैदल और घुड़सवार पुलिस द्वारा वहां लाठी बरसाई गई। भीड़ तितर-बितर हुई। बहुतों को चोटें लगीं। राजेन्द्र प्रसाद पर भी लाठी पड़ी, वे घायल हुए किन्तु गिरफ्तार नहीं किए गए। वे जनता को शांतिपूर्वक विरोध के लिए उत्साहित करते रहे। उन्होंने दूसरी जगहों का भी दौरा किया। बाद में सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर हजारीबाग जेल भेज दिया। खान अब्दुल गफ्फार खां राजेन्द्र प्रसाद से मिलने आए। वे भी गिरफ्तार कर लिए गए। आचार्य कृपालानी मिलने आए, उन्हें भी गिरफ्तार कर हजारीबाग जेल भेज दिया गया। हजारीबाग जेल में राजेन्द्र प्रसाद को दमे की बीमारी जोर पकड़ गई। उसी बीमारी की हालत में उन्हें पटना अस्पताल में लाया गया।

९. बिहार भूकम्प: सार्वजनिक सेवा का महत्व

15 जनवरी, 1934 के बिहार के प्रलयंकारी भूकम्प को भुलाया नहीं जा सकता। हजारों घर बर्बाद हुए। लाखों बेघरबार हुए। करोड़ों का नुकसान हुआ। राजेन्द्र प्रसाद बीमारी की अवस्था में पटना अस्पताल में कैद थे। वे बिहार के गांधी कहलाते थे। बिहार सरकार के सामने प्रलयंकारी भूकम्प का दृश्य था। भूकम्प पीड़ितों की सेवा तथा उजड़े बिहार को बसाना एक काम था। उसी समय बिहार की जनता का दुख दूर करने के लिए राजेन्द्र प्रसाद जेल के अस्पताल से मुक्त किए गए।

जेल से छूटे कुछ मित्रों के साथ बैठकर 'बिहार सेण्ट्रल कमेटी' के नाम से एक संस्था की स्थापना की गई। राजेन्द्र प्रसाद उसके प्रधान (अध्यक्ष) बने और जयप्रकाश नारायण सचिव। अनुग्रह नारायण सिंह जेल से छूटे तो राजेन्द्र प्रसाद ने सचिव का भार उन्हें सम्भाल दिया। कुछ ही दिनों में यह सिद्ध हो गया कि उनको सरकारी मदद से अधिक लाभकारी एवं स्वाभिमानी सहायता गैर-सरकारी माध्यम से मिलती है। राजेन्द्र प्रसाद की अपील पर केन्द्रीय सहायता कोष में रुपये तथा अन्य मानवोपयोगी सामान आना शुरू हो गया। सरकार की तरफ से भी रिलीफ फण्ड के लिए अपील निकली। दोनों फण्डों में जो धन और सामान मिलता, उसका ब्यौरा प्रतिदिन प्रकाशित किया जाता। कुछ ही दिनों के बाद सरकारी फण्ड बहुत पीछे छूट गया। बिहार सेंट्रल फण्ड में आई रकम और सामान कहीं आगे बढ़ गया। राजेन्द्र प्रसाद ने सभी दाताओं की नामावली छपवा दी। वह प्रायः चार सौ पन्ने की पुस्तक बन गई। इस सम्बन्ध में राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि 'सार्वजनिक काम में रुपये-पैसों के मामले में सफाई निहायत जरूरी है। सार्वजनिक फंड में ईमानदारी की कीमत सच्ची सेवा से कम नहीं है।'

बिहार भूकम्प में लाखों-लाख मकान गिर गए थे। हजारों कुंए बालू से भर गए थे। बहुतेरे ऐसे गांव थे जहां कुंओं में पानी था ही नहीं, यहां तक कि कहीं-कहीं गहरे गड्ढे इस तरह बालू से भर गए थे कि यह पता नहीं चलता था कि यहां कभी गड्ढा रहा है। पानी का घोर संकट। कहीं-कहीं छोटी-मोटी नदियों की धारा बालू से बिलकुल भर गई थी। यह किसी एक गांव या इलाके की बात नहीं थी, गंगा के उत्तर में प्रायः सभी जिलों में सैंकड़ों मील की लम्बाई और प्रायः 40-50 मील की चौड़ाई में बहुत करीब-करीब एक ही हालत थी। वैसी जगहों में पानी पहुंचाना, खेतों में या अन्य स्थानों से बालू हटाना, यह सब असाधारण काम ईमानदारी और रात-दिन के परिश्रम से ही किया जा सकता था और

किया गया। इनकी मदद में गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, कुमारप्पा, कृपालानी, हार्डीकर, श्रीमती सोफिया सोमजी, कुमारी म्यूरियल लेस्टर, कुमारी अगाथा हैरिसन, एण्ड्रयूज जैसे मूर्धन्य व्यक्तियों ने पूरी शक्ति और ताल-मेल के साथ काम किया। इस काम के पीछे जो संगठन बना, यह भी असाधारण था। देश-विदेश से जो धन आया और सामान मिला, उसका पाई-पाई का हिसाब रखा गया। इन सब कामों के पीछे राजेन्द्र प्रसाद की कर्मठता, ईमानदारी और कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर काम करने की अद्भुत शक्ति थी। क्रमबद्ध योजना से सहायता और उनको फिर काम में लगाने की जो व्यवस्था हुई, उसने उजड़े बिहार को ऐसा बना दिया जिसको देखकर यह कहा गया कि अभिशाप भी कभी-कभी वरदान बनकर आता है। वही बिहार के लिए हुआ। विध्वंस को निर्माण में बदल दिया गया। इस काम के साथ राजेन्द्र प्रसाद की प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा इतनी बड़ी कि देशवासियों ने उनके नाम के साथ 'देशरत्न' जोड़ दिया। इसी बात को लेकर जयप्रकाश नारायण ने एक जगह लिखा है कि 'गांधीजी ने अपने दरबार में कई रत्न इकट्ठे किए थे, उनके देशरत्न राजेन्द्र बाबू ही कहे गए।

राजेन्द्र बाबू की संगठन शक्ति, सेवा परायणता और लोकप्रियता को समझ कर ही टूटी कांग्रेस की अव्यवस्था को फिर से संगठित करने के लिए गांधीजी सहित कांग्रेस कार्य समिति ने एकमत फैसला किया कि बम्बई में होने वाले 48 वें कांग्रेस-अधिवेशन का अध्यक्ष पद राजेन्द्र प्रसाद को दिया जाए। कांग्रेस अध्यक्ष पद स्वीकार करने का प्रस्ताव राजेन्द्र प्रसाद के पास पहुंचा। इसे स्वीकारने में उन्होंने अपनी असमर्थता बताई। कार्यसमिति के सदस्यों को तो उन्होंने साफ कह दिया कि अभी मेरे लिए यह भार उठाना सम्भव नहीं है। बात गांधीजी के पास पहुंची। गांधीजी ने राजेन्द्र प्रसाद को अध्यक्ष पद स्वीकार करने को कहा तथा इन्कार करने का कारण पूछा। राजेन्द्र प्रसाद ने कहा "आपका आदेश शिरोधार्य है, किन्तु मेरे सामने एक नैतिकता का प्रश्न खड़ा हुआ है, जिसकी वजह से मुझे अध्यक्ष पद स्वीकार करना ठीक नहीं लग रहा है।" नैतिकता के प्रश्न ने गांधीजी को चौंका दिया। पूछा, "ऐसी क्या बात है?" राजेन्द्र प्रसाद मौन हो गए फिर रुक कर बोले, "कांग्रेस अध्यक्ष ऐसे व्यक्ति को नहीं होना चाहिए जो कर्जदार हो।" इतना सुनते ही गांधीजी अवाक रह गए। थोड़ा शान्त होकर पूछा— क्या बात है? मुझे साफ-साफ बताओ।

राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—"भाई की मृत्यु कुछ ही दिन पूर्व हुई है। अभी हाल ही में घर-गृहस्थी, आमद और देनदारी का हिसाब मेरे सामने आया है। पता चला है कि हम पर दो लाख का कर्ज है। वह मुझे अब चुकाना है।" सुनकर गांधीजी ने सेठ जमनालाल बजाज को बुलवाया। राजेन्द्र प्रसाद से जो जानकारी मिली थी, उससे सेठजी को अवगत कराया और पूछा क्या इस भार से राजेन्द्र प्रसाद को मुक्त कराया जा सकता है? कांग्रेस अध्यक्ष पद स्वीकार करने में इनके सामने यह नैतिकता का प्रश्न आ खड़ा हुआ है। गांधीजी का आदेश पाकर सेठजी ने अपने मैनेजर को जीरादेई भेजकर पूरी जानकारी प्राप्त की। मालूम हुआ कि जमींदारी यदि रेहन रख दी जाए तथा कुछ सामान बिक जाए तो कर्ज आसानी से चुकाया जा सकता है। अन्ततोगत्वा कर्ज चुकाने का प्रबन्ध किया गया। तब जाकर राजेन्द्र प्रसाद ने कांग्रेस का अध्यक्ष पद स्वीकार किया। नैतिकता की रक्षा सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिए कितनी महत्वपूर्ण है और प्रमुख है, इसकी यह एक मिसाल है।

10. कांग्रेस अध्यक्ष

1934 के अक्तूबर में कांग्रेस का 48 वां अधिवेशन राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में हुआ। यह शानदार अधिवेशन था। इस अवसर पर बम्बई की सजावट अपने ढंग की थी। इसके जलूस निराले थे। प्रतिनिधियों तथा दर्शकों की भीड़ बेजोड़ थी।

यह कांग्रेस का पचासवां साल था। स्वर्ण जयंती मनाने का फैसला लिया गया। इस फैसले के साथ कांग्रेस की मशाल जगमगा उठी। इस फैसले ने एक महोत्सव का रूप धारण कर लिया। उस महोत्सव के माहौल में कांग्रेस पुनः संगठित हो गई। स्वर्ण जयंती के कार्यक्रम को पूर्ण उत्साह और श्रद्धा से मनाया गया। उसको देखकर ब्रिटिश सरकार के दांत खट्टे पड़ गए। कांग्रेस स्वर्ण जयंती की रिपोर्ट लन्दन पहुंची। वहां से भारत को उपहार स्वरूप 1935 का ऐक्ट मिला। स्वराज्य की यह पहली सीढ़ी थी। इसी पर चढ़कर भारत के छह प्रान्तों में कांग्रेस की प्रजातांत्रिक सरकार बनी।

कांग्रेस स्वर्ण जयंती के अवसर पर राजेन्द्र प्रसाद ने दो बड़ी महत्वपूर्ण घोषणाएं कीं। एक कांग्रेस का इतिहास लिखना और उसे स्वर्ण जयंती के अवसर पर प्रकाशित करना। इतिहास डा. पट्टाभि सीतारामैया ने लिखा। पाण्डुलिपि का सम्पादन राजेन्द्र प्रसाद ने किया। मूल इतिहास अंग्रेजी में लिखा गया। राजेन्द्र प्रसाद ने उस इतिहास का कई भाषाओं में अनुवाद कराया। कांग्रेस स्वर्ण जयंती के अवसर पर इतिहास का अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तेलुगु, तमिल और उर्दू में संस्करण एक साथ प्रकाशित कराए गए। दूसरा काम जिससे कांग्रेस की नीति में एक विशेष परिवर्तन लाया गया, वह था देशी रियासतों में देशी राज्य-प्रजा मंडल की स्थापना। ब्रिटिश भारत में जिस प्रकार कांग्रेस लोकतंत्र की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थी उसी प्रकार देशी रियासतों में स्थापित प्रजा-मंडलों ने अपनी-अपनी रियासतों में लोकतंत्र की स्थापना के प्रयत्न शुरू कर दिए। इससे पूर्व कांग्रेस देशी रियासतों में अपने आन्दोलन को पहुंचाने में असफल रही थी।

अब तक कांग्रेस का कोई स्थायी कार्यालय नहीं था। नव-निर्वाचित कांग्रेस अध्यक्ष के साथ उसकी सुविधा के अनुसार ही प्रधान कार्यालय चलता था। राजेन्द्र प्रसाद ने आचार्य जे.बी. कृपालानी को कांग्रेस का महामंत्री बनाया और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का स्थायी प्रधान कार्यालय स्वराज्य भवन में स्थापित किया। स्वराज्य भवन पं० मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस को समर्पित कर दिया था।

स्थायी कार्यालय बन जाने के बाद काम करने की क्षमता में अभूतपूर्व प्रगति हुई। कांग्रेस का सभापति सम्पूर्ण देश का दौरा करता था और अपने दफ्तर के सुचारु रूप से संचालन में योगदान देता था। इस कार्यालय के मूल में जन-सम्पर्क प्रमुख था। अतः प्रायः सभी प्रान्तों में प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन करने का प्रस्ताव किया गया। राजेन्द्र प्रसाद कई प्रान्तों में गए। इस प्रकार के दौरे के सम्बन्ध में वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं:

"सभी जगहों में सभाएं होतीं, स्वागत होता, जलूस निकलता, लोगों में उत्साह काफी दीखता। मेरे लिए इस प्रकार की यात्रा का, अपने सूबे के बाहर का यह पहला ही अनुभव था। यह अनुभव अच्छा और सुखद था, क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रान्तों को देखने के अलावा कांग्रेस के संगठन को सुदृढ़ बनाने का कुछ मौका मिलता और जन साधारण से सम्पर्क बढ़ता।"

1935 में क्वेटा में भयंकर भूकम्प आया। बिहार में भूकम्प पीड़ितों की सेवा एवं व्यवस्था के अनुभव का लाभ क्वेटा को मिले, इसलिए वहां के लिए भी राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में रिलीफ कमेटी बनी। इनकी सेवा और परिश्रम का फल पीड़ितों को प्राप्त हुआ।

कांग्रेस का पहला अधिवेशन दिसम्बर 1885 में बम्बई में हुआ था। स्वर्ण जयंती का मुख्य महोत्सव भी बम्बई में हुआ। इसमें राजेन्द्र प्रसाद स्वयं उपस्थित थे। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में भाग लेने वालों में से सिर्फ सर दिनशा वाच्छा सबसे पुराने कांग्रेसी उस समय जीवित थे। राजेन्द्र प्रसाद उनके दर्शन के उपरान्त ही स्वर्ण जयंती समारोह में सम्मिलित हुए। भारत के प्रायः सभी शहरों, नगरों और कस्बों में कांग्रेस का स्वर्ण जयंती समारोह धूमधाम से मनाया गया। इससे पूर्व सम्पूर्ण देश की जनता ने इतने उत्साह से किसी प्रकार का सार्वजनिक महोत्सव कभी नहीं मनाया था। उससे कांग्रेस की प्रतिष्ठा को चार चांद लग गए।

उसी साल बादशाह जार्ज पंचम के राज्य के पच्चीस साल पूरे हो रहे थे। भारत सरकार की तरफ से इस उपलक्ष में रजत-जयंती मनाई गई थी। भारत की कोटि-कोटि जनता के दिलों में यह स्पर्धा थी कि कांग्रेस की स्वर्ण जयंती बहुत ही शान-शौकत से मनाई जाए और अपनी इस इच्छा को उसने पूरे देश में प्रदर्शित किया।

1935 में मैकडोनाल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय से मुसलमान जितने खुश थे, हिन्दू उतने ही क्षुब्ध। तनाव बढ़ रहा था। कांग्रेस इस निर्वाचन-व्यवस्था को राष्ट्रीय एकता के लिए घातक मानती थी। ऐसी परिस्थिति में राजेन्द्र प्रसाद ने केवल अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को नहीं, पूरे देश की जिला समितियों को बुलाया और इनसे इस संबंध में राय मांगी। कांग्रेस अध्यक्ष को श्री जिन्ना से मिलकर ऐसा रास्ता निकालना था, जिससे मैकडोनाल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय को खंड-खंड किया जाए। इस संबंध में कांग्रेस में मतभेद था। राजेन्द्र प्रसाद ने अपने व्यक्तित्व से मतभेद के वातावरण को नरम किया। उसी समय कार्यसमिति में तय हुआ कि समझौते की बातचीत कांग्रेस और लीग के बीच हो। दोनों एक साथ बैठकर इसके प्रत्येक पहलू पर विचार करें। विचारोपरान्त निश्चित समझौते पर कांग्रेस की ओर से राजेन्द्र प्रसाद तथा मुसलमानों की ओर से श्री जिन्ना के हस्ताक्षर होंगे। दोनों के
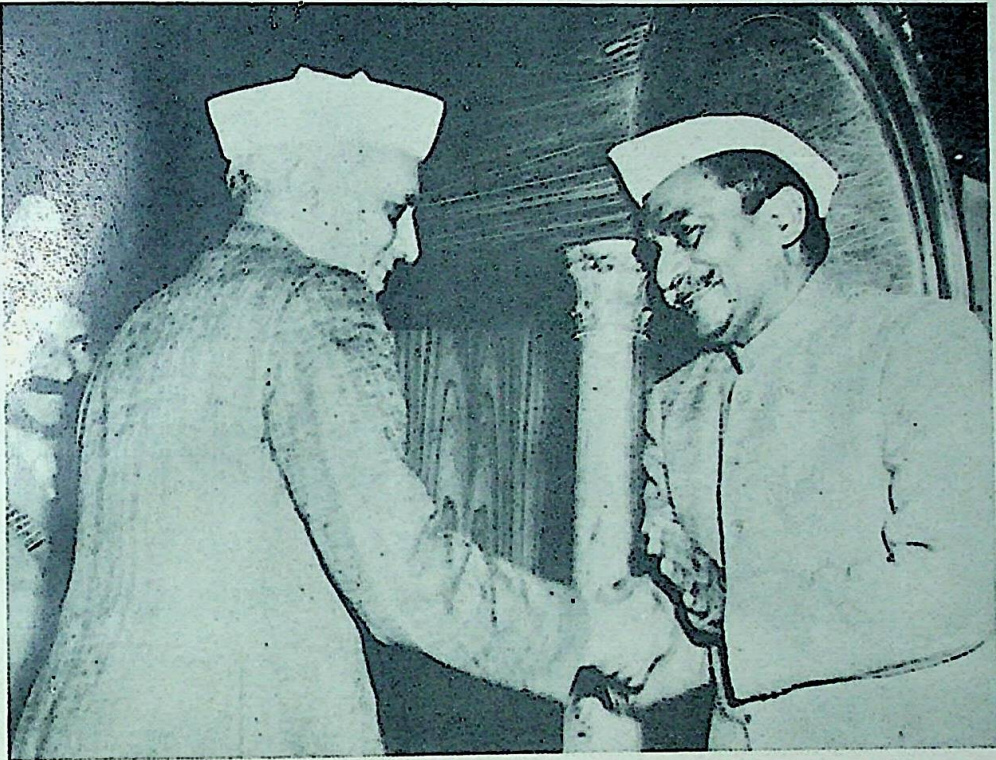
संविधान पर हस्ताक्षर करने के बाद प्रधान मंत्री नेहरू और राजेन्द्र प्रसाद

राजाजी के साथ विनोदपूर्ण मुद्रा में राजेन्द्र बाबू
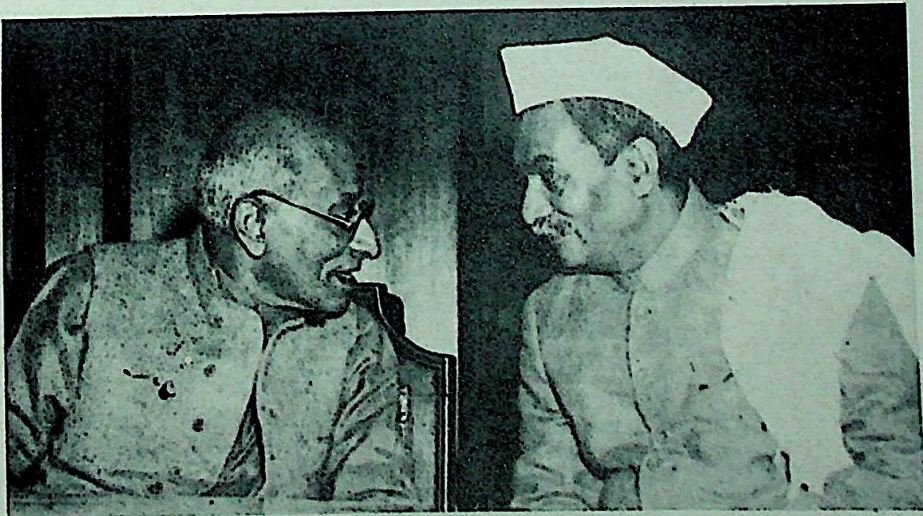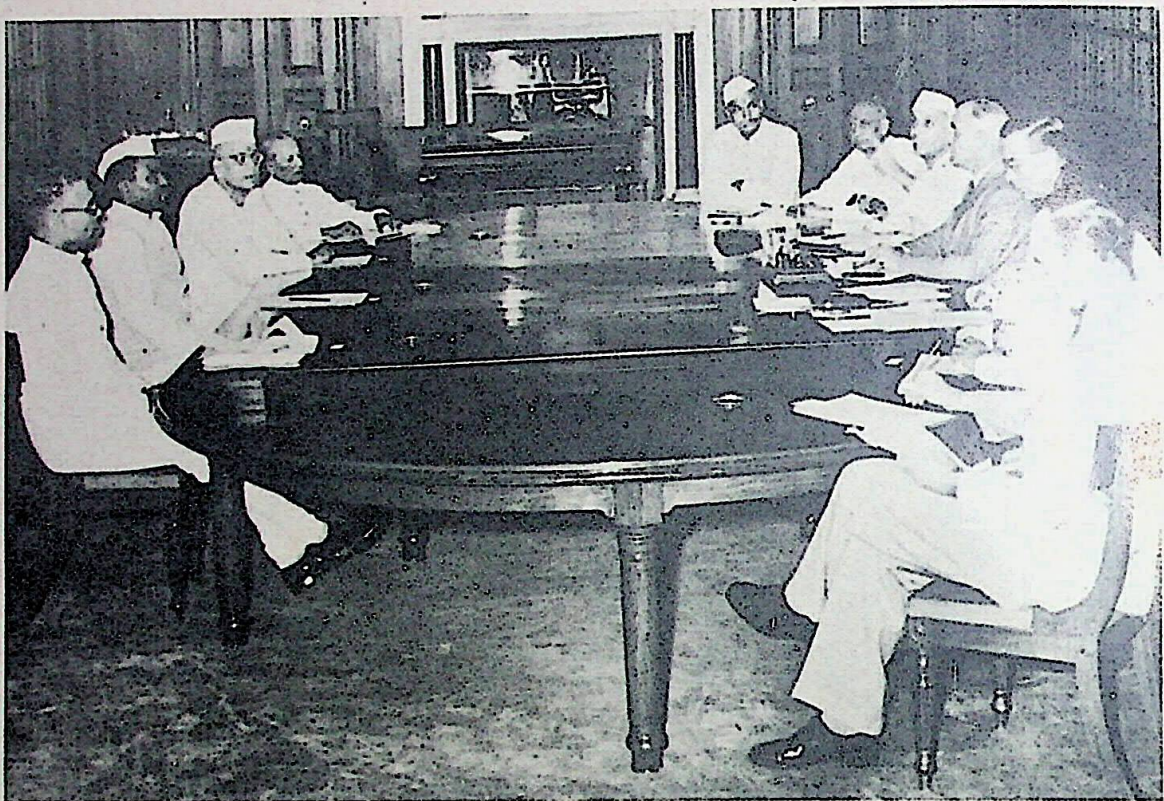
अंतरिम मंत्रिमंडल की बैठक का एक दृश्य

मौलाना आजाद को मंत्री पद की शपथ दिलाते हुए राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद
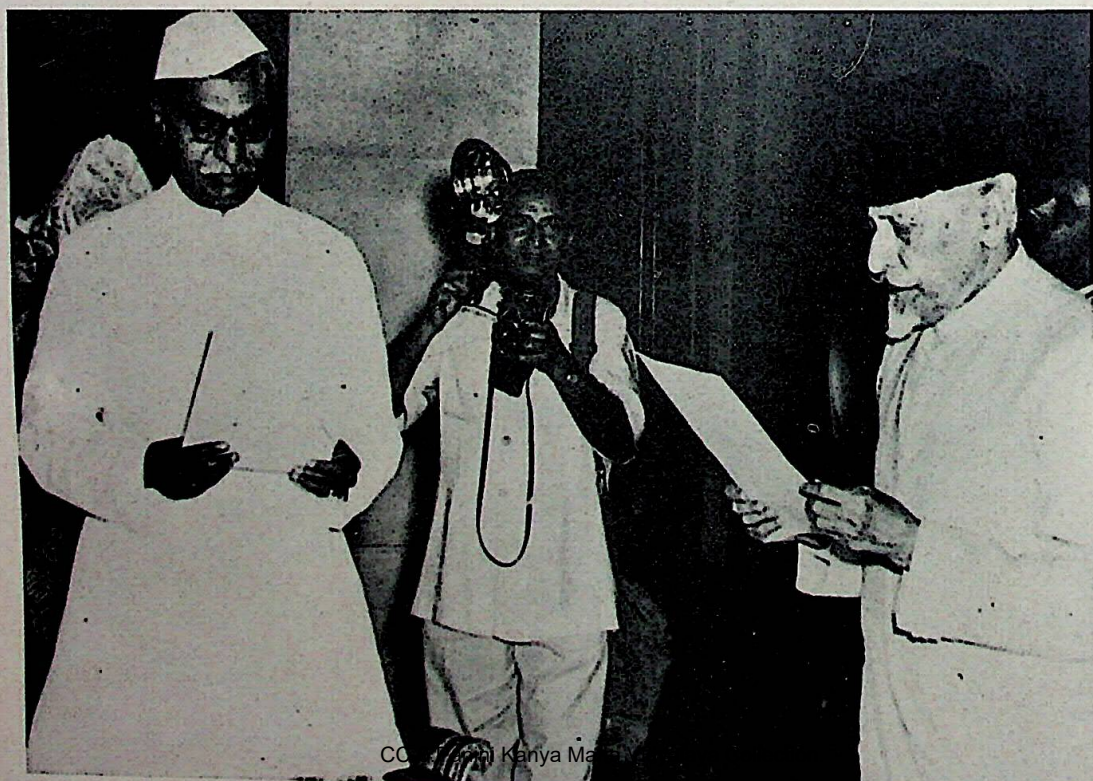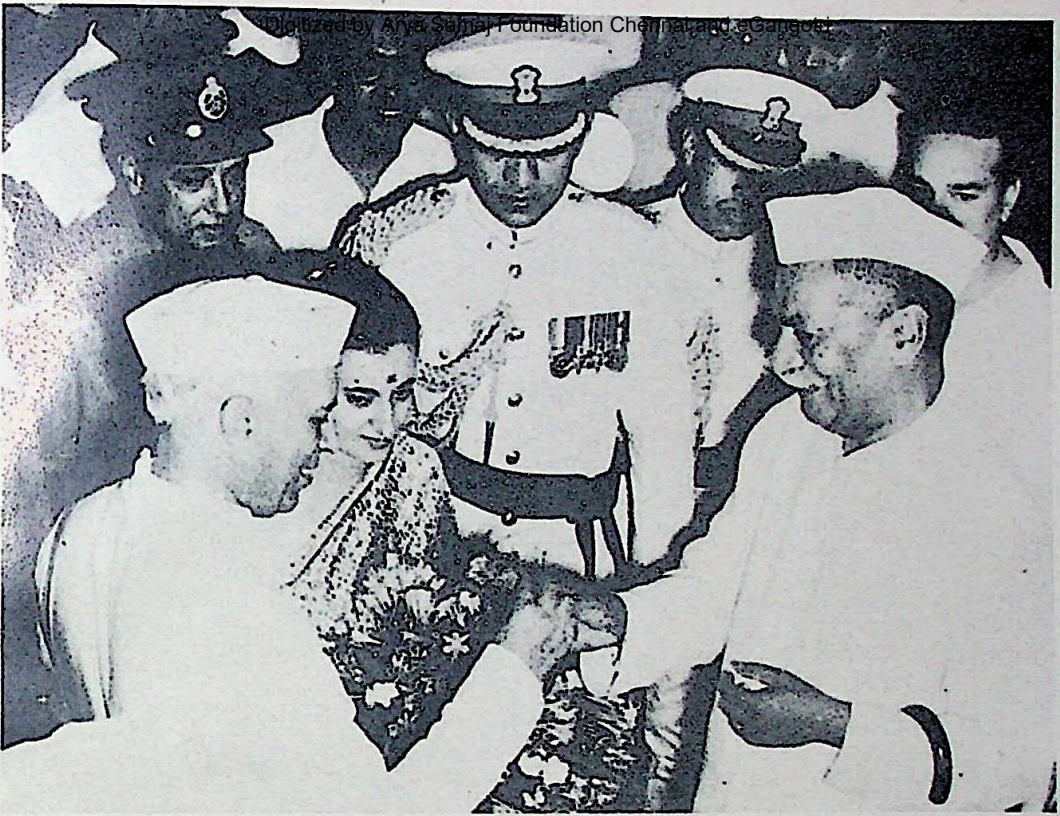
भारत के प्रथम राष्ट्रपति-पद पर निर्वाचित होने के बाद प्रधानमंत्री नेहरू
और श्रीमती इंदिरा गांधी की बधाई स्वीकार करते हुए राजेन्द्र प्रसाद

जनतंत्र का राष्ट्रपति जनता के बीच (यह दृश्य 1954 का है जब राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति के रूप में अपने गांव गए थे।)
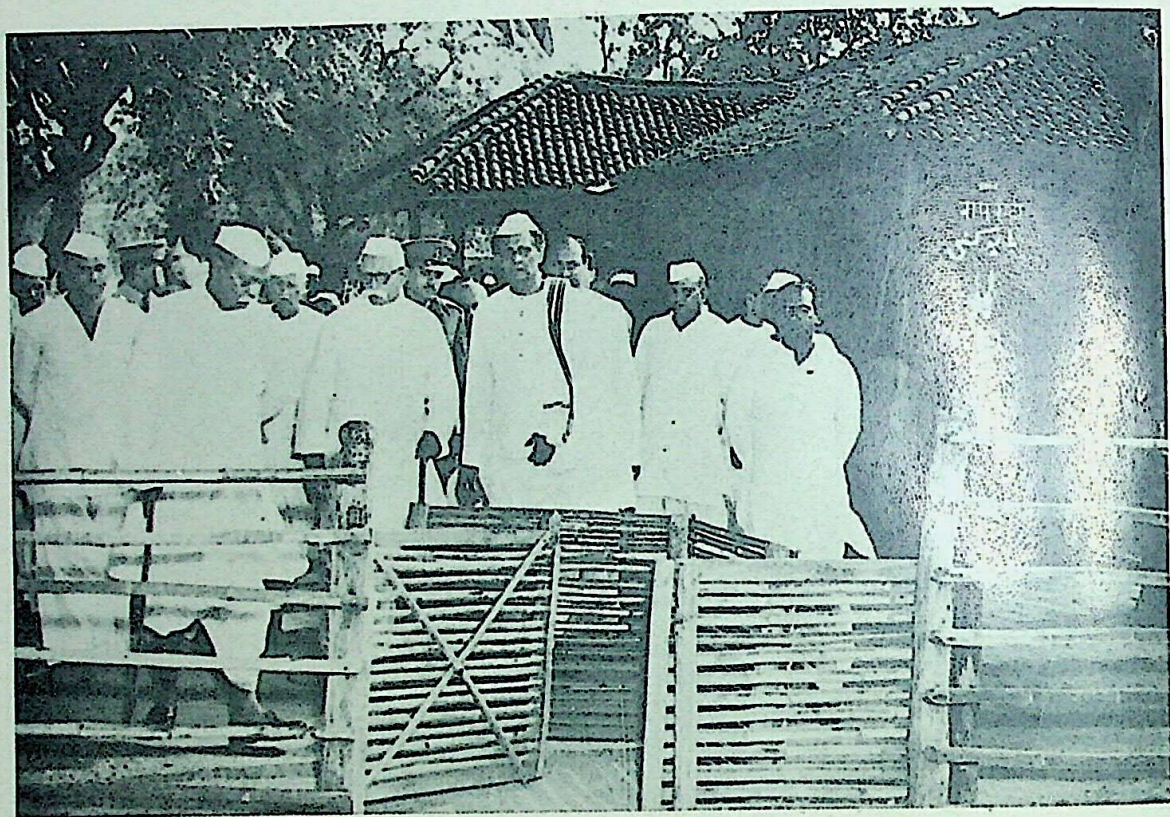
राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपिता गांधी की कुटिया में। उनके साथ हैं मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्य मंत्री पं. रविशंकर शुक्ल

राजघाट पर राष्ट्रपिता को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए राजेन्द्र बाबू

मध्य कई सप्ताह तक बातें होती रहीं। राजेन्द्र प्रसाद अपनी पद्धति के अनुसार प्रत्येक दिन की बातचीत के नोट तैयार कर लेते तथा श्री जिन्ना से उसकी स्वीकृति (पुष्टि) ले लिया करते थे। राजेन्द्र प्रसाद ने भेदात्मक प्रतिनिधित्व की नीति मान ली। बदले में श्री जिन्ना से संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था देने का आश्वासन प्राप्त किया। किन्तु, श्री जिन्ना बाद में अपने वायदे से मुकर गए। उन्होंने कहा कि कांग्रेस अध्यक्ष के अतिरिक्त, मालवीयजी से भी इसकी स्वीकृति स्वरूप इस व्यवस्था पर हस्ताक्षर करवा लिए जाएं। यह शर्त से बाहर की बात थी। इस सम्बन्ध में राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा, "समझौता नहीं हो सका, इसका मुझे बहुत अफसोस रहा क्योंकि मैं समझता था कि हम जिन शर्तों पर समझौता करना चाहते थे और जिन पर हमने श्री जिन्ना को राजी कर लिया था वे शर्तें देश के लिए हितकर होंगी। इससे भी अधिक अफसोस इसलिए हुआ कि जिस कारण समझौता नहीं हो सका, वह ऐसी बात थी जिसका कोई विशेष महत्व नहीं था। उसको न मानना या उस पर जिद करना मेरे ख्याल से दोनों ही बेकार थे।"

कांग्रेस के भीतर समाजवादी विचार वालों ने इसी साल समाजवादी कांग्रेस की स्थापना की। ये समाजवादी विचार वाले, कांग्रेस मंच से कांग्रेस के दक्षिण पंथी लोगों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते थे। 1936 के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में समाजवादी विचारकों के भाषण का जवाब देने के लिए राजेन्द्र प्रसाद से कहा गया। वहां राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—"लोगों ने अपने भाषणों में क्रांतिकारी और सुधारवादी सिद्धांतों का उल्लेख किया है। किन्तु मैं यह सब बातें नहीं समझता हूं। मैं देहाती व्यक्ति हूं और किताबी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। मैं तो अपना निर्णय देश की दशा को देखते हुए, देशवासियों की गरीबी और दुर्दशा को ध्यान में रख कर करता हूं। यदि हम किताबी ज्ञान के आधार पर ही भारत के भविष्य का निर्णय करेंगे तो पता नहीं हम देश को किस ओर ले जाएंगे।"

राजेन्द्र प्रसाद के यह शब्द आज की स्थिति में भी कितने सच हैं, कितने व्यावहारिक हैं। काश! आज भी हम इस तथ्य को समझ पाते। उनका व्यक्तित्व निर्विवाद था और ये सबको मान्य होते थे। इसलिए वें अजातशत्रु कहे जाते थे। अपने विशिष्ट दल से प्रतिबद्ध राजनीतिक जीवन के बावजूद बिहार ही नहीं भारत में उनका कोई निजी शत्रु नहीं था। अहिंसा के व्यवहार द्वारा सारे विवाद धुंधले पड़ जाते हैं और संघर्षों में भी सौहार्द का वातावरण बन जाता है। यह सच्चाई राजेन्द्र प्रसाद के जीवन में शब्दश: चरितार्थ होती थी। उनके व्यक्तित्व की व्याख्या जिन विशेषताओं के माध्यम से की जा सकती है, वे उनमें कूट-कूट कर भरी थीं।

सुभाषचन्द्र बोस 1938 में कांग्रेस के अध्यक्ष थे। चोटी के कांग्रेसी नेताओं के बीच सैद्धांतिक संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष में वामपंथी और दक्षिणपंथी दो खेमे बन गए थे। सुभाषचन्द्र बोस दूसरी बार भी कांग्रेस के अध्यक्ष-पद के लिए उम्मीदवार बन गए। इनका मुकाबला डा. पट्टाभि सीतारामैया से हुआ। सुभाषचन्द्र बोस की जीत हुई। वे 1939 वाली त्रिपुरा कांग्रेस के अध्यक्ष हुए। कांग्रेस के अन्दर इन दोनों खेमों के सदस्यों की मिली-जुली कार्यसमिति का गठन करना उन्होंने पसन्द नहीं किया। इसी कशमकश के बीच 28 अप्रैल, 1939 को कलकत्ता में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाई गई। वहां वे अपने नेतृत्व का खुलासा चाहते थे। वह नहीं हो सका। फलस्वरूप उन्होंने इस्तीफा दे दिया। वह एक विशेष स्थिति में हटे। सुभाषचन्द्र बोस असाधारण

व्यक्तित्व के नेता थे, पर उस समय उनका कांग्रेस कार्यसमिति में बहुमत नहीं था, यद्यपि वे अधिक अल्पमत में भी नहीं थे। ऐसी स्थिति में किसी के लिए कांग्रेस का अध्यक्ष पद स्वीकार करना कठिन था। किसी के लिए भी यह चुनौती की स्थिति थी। दोनों खेमों के बीच अधिक-से-अधिक लोकप्रिय नेता को ही अध्यक्ष भार उठाना था। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने राजेन्द्र प्रसाद को अध्यक्ष पद संभालने को कहा। पहले तो वे इन्कार करते रहे, पर जब गांधीजी का आदेश आया तो वह उस आदेश को टाल नहीं सके। राजेन्द्र प्रसाद का सहज सौजन्य, समस्या को समझने की प्रवृत्ति और सबको साथ लेकर काम करने की पद्धति वाद-विवाद में आवेश की ओर प्रवाहित होने वाले व्यक्तियों को शान्त करने के लिए बाध्य कर देती थी और निश्छल हृदय से निकले उनके वचन क्रोध को फटकने नहीं देते थे। ये सारी चारित्रिक विशेषताएं उस विषम स्थिति में सौंपे दायित्व को निभाने में बड़ी सहायक सिद्ध हुईं।

भारत के छह प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी थी। यूरोप के द्वितीय महायुद्ध में ब्रिटिश सरकार एक पक्षधर थी। ब्रिटिश सरकार भारत को भी इस युद्ध में अपने साथ घसीट चुकी थी। कांग्रेस का इसमें सैद्धांतिक मतभेद था। अहिंसा के सिद्धांत के अतिरिक्त इसके सामने नैतिकता का भी प्रश्न था। गांधीजी विभिन्न राष्ट्रों को नैतिक सहायता देना चाहते थे। किन्तु वह भी एक शर्त के साथ। शर्त यह थी कि स्वतंत्र होने के बाद ही सहायता देने का फैसला किया जा सकता है। इसके पूर्व वे युद्ध से भारत को अलग रखना चाहते थे। कांग्रेस ने भी यही फैसला लिया। देश-विदेश की स्थिति बहुत तेजी से बदल रही थी। राजेन्द्र प्रसाद अपने सभापतित्व काल में प्रत्येक चार महीने पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाते रहे तथा उसके फैसले से ब्रिटिश सरकार को अवगत कराते रहे। कांग्रेस की तरफ से पूर्ण स्वतंत्रता की मांग रखी गई। तब लॉर्ड लिनलिथगो वाइसराय थे। उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद को समझौते के लिए आमंत्रित किया।

कांग्रेस के फैसले से वाइसराय को अवगत करा दिया गया। किन्तु वाइसराय ने कहा कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस की मांग पर युद्ध के बाद ही विचार करेगी। इस पर राजेन्द्र प्रसाद ने कार्य-समिति से सलाह करने के बाद कांग्रेस मंत्रिमण्डलों को इस्तीफा देकर सरकार से बाहर आने का आदेश दिया। भारत इस युद्ध में साम्राज्यवाद के साथ नहीं है, यह कांग्रेस ने स्पष्ट कर दिया। राजेन्द्र प्रसाद वर्धा बुलाए गए। कार्यसमिति की बैठक वर्धा में 12 अगस्त से 23 अगस्त, 1939 तक चली। विचाराधीन प्रमुख विषय था: अंग्रेजों का तलवार के बल पर भारत पर शासन करने का विचार है, इसका मुकाबला किस ढंग से किया जाए। इस पर गंभीरता से विचार किया गया। इसी बैठक में गांधीजी से अनुरोध किया गया कि वे देश का नेतृत्व ग्रहण करें। युद्ध के बहिष्कार का कार्यक्रम निश्चित हुआ। गांधीजी ने कहा कि मेरी ओर से यह अंतिम असहयोग आन्दोलन होगा। युद्ध विरोध के लिए सामूहिक सत्याग्रह नहीं, व्यक्तिगत सत्याग्रह की एक नई पद्धति का प्रयोग किया गया। व्यक्तिगत सत्याग्रही ही इसमें शरीक होंगे। सरकार को बगैर परेशानी में डाले सत्याग्रही कांग्रेस की घोषणा को सार्वजनिक रूप से व्यक्त करेंगे। गांधीजी ने कहा कि भाषण का स्वातंत्र्य प्रजातांत्रिक जीवन की सांस है। आज, जबकि युद्धरत देश भंयकर हिंसा का ताण्डव कर रहे हैं, युद्ध के उचित विकल्प के रूप में अहिंसा के प्रचार की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। अक्तूबर 12-13 को कार्यसमिति की सहमति से गांधीजी के व्यक्तिगत सत्याग्रह का आन्दोलन शुरू हुआ। प्रथम सत्याग्रही विनोबा भावे चुने गए। उन्होंने वर्धा से सात मील दूर ग्रामीण जनता के समक्ष युद्ध विरोधी भाषण देकर अपना नैतिक विरोध

प्रकट किया। इस प्रकार आन्दोलन का प्रारंभ हुआ। श्री विनोबा 21 अक्तूबर को देवली में गिरफ्तार कर लिए गए। 30 अक्तूबर, 1940 की शाम, जवाहरलाल नेहरू गिरफ्तार कर लिए गए। इस व्यक्तिगत सत्याग्रह में लगभग 2500 व्यक्ति गिरफ्तार और दण्डित किए जा चुके थे तभी 3 दिसम्बर, 1941 तक सत्याग्रहियों को जेल से मुक्त करने का निर्णय प्रकाशित किया गया। सरकार ने सत्याग्रहियों को जेल से मुक्त तो कर दिया, किन्तु उनके इस उदार व्यवहार का कोई अनुकूल प्रभाव गांधीजी पर नहीं पड़ा।

त्रिपुरी कांग्रेस (मार्च 1939) के बाद अगला अधिवेशन बिहार में हो, ऐसा प्रस्ताव और आमंत्रण राजेन्द्र प्रसाद की ओर से किया गया था। इस अधिवेशन के लिए मौलाना अबुल कलाम आजाद अध्यक्ष चुने गए। 1936 में कांग्रेस ने फैसला लिया था कि अधिवेशन शहर के बजाय गांव में हुआ करे। कांग्रेस के अधिवेशन में बहुत लोग जुटते थे। उनके आवास और भोजन आदि की व्यवस्था में एक नगर बस जाता था। इसका लाभ गांव वालों को मिले तथा इतने विशाल अधिवेशन के बहाने गांव को साधन-सम्पन्न बनाया जा सके, इस उद्देश्य से बिहार में कांग्रेस के अधिवेशन के लिए हजारीबाग जिले का एक गांव रामगढ़ चुना गया। रामगढ़ में किसी प्रकार की सुविधा नहीं थी। वहां पानी का नल लगाना पड़ा, बिजली लेनी पड़ी, सड़कें बनानी पड़ीं। इस अधिवेशन में वह एक शहर जैसा हो गया। आवागमन के रास्ते बने! उसको इतना अच्छा बनाया गया कि अधिवेशन के बाद रामगढ़ में फौज की छावनी बन गई और वह व्यापार का केन्द्र बन गया।

मौलाना आजाद के सभापतित्व में वह अधिवेशन हुआ। उसके बाद कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच सैद्धांतिक और वैचारिक मतभेद चलने लगा। कांग्रेस के नेता जेल जाते रहे। देश के हजारों स्वतंत्रता सेनानी जेल में बन्द का दिए गए। रामगढ़ के बाद कांग्रेस का बजाब्त अधिवेशन मेरठ में हुआ। किन्तु इसके पूर्व मौलाना आजाद के बाद जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष हो गए थे। आजादी के बाद मेरठ कांग्रेस का अध्यक्ष आचार्य जे०बी० कृपालानी को मनोनीत किया गया। ये भी कुछ ही दिनों तक अध्यक्ष रहे। सरकार और कांग्रेस संस्था के बीच प्रधानता के मामले पर मतभेद हुआ। इसी मतभेद के कारण 17 नवम्बर, 1947 को कृपालानीजी ने इस्तीफा दे दिया।

राजेन्द्र प्रसाद 2 सितम्बर, 1946 से अन्तरिम सरकार में खाद्य और कृषि मंत्री थे। 11 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा के अध्यक्ष चुने गए। वे इन दोनों पदों का भार ढो ही रहे थे कि अचानक जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभ भाई पटेल ने राजेन्द्र प्रसाद से 17 नवम्बर, 1947 को संविधान सभा के उनके कक्ष में जाकर आग्रह किया वे कांग्रेस अध्यक्ष का भार उठाएं। राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—यह तभी हो सकता है जब मुझे इन दोनों पदों से मुक्त कर दिया जाए। जवाहरलाल नेहरू ने कहा—संविधान सभा के अध्यक्ष तो आप ही रहेंगे, किन्तु खाद्य और कृषि मंत्री के लिए योग्य व्यक्ति मिलने पर उसे यह पद सौंपने तक, इसे भी संभालने की कृपा करेंगे।

इसी प्रसंग में थोड़ा पीछे की ओर देखना जरूरी है। 1940-41 में व्यक्तिगत सत्याग्रह के अतिरिक्त कांग्रेस के रचनात्मक कार्य चलते रहे। 1942 के आगमन के साथ अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर घटनाएं तेजी से घटने लगीं। हिटलर तेजी के साथ यूरोप को निगलता जा रहा था। जापान के युद्ध में सम्मिलित हो जाने से यूरोप की लड़ाई भयानक विश्व युद्ध में बदल गई।

युद्ध में सहयोग लेने के उद्देश्य से भारतीय नेताओं पर अपना माया जाल फेंकने के लिए सर स्टैफर्ड क्रिप्स 22 मार्च, 1942 को दिल्ली पहुंचे। पहले वे वाइसराय सहित केन्द्रीय सलाहकारिणी समिति से मिले। उसके बाद राजनीतिक दलों के नेताओं से मिले। भारतीय राजनीतिक समस्या हल करने के लिए ब्रिटिश सरकार की ओर से उन्होंने निम्न प्रस्ताव पेश किया:

1. ब्रिटिश सरकार का प्रस्ताव है कि भारत में स्वायत्त शासन की सिद्धि को शीघ्र से शीघ्र सम्भव बनाने हेतु एक नवीन भारतीय यूनियन की स्थापना के लिए कदम उठाए जाएं, जिसे एक उपनिवेश का पूरा दर्जा प्राप्त हो। इस उपनिवेश को, यदि वह वैसा ही तय करे तो, ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से अलग होने का अधिकार होगा।

2. युद्ध की समाप्ति होने के तुरन्त बाद एक विधान निर्माणकारी निकाय का संगठन किया जाएगा। इसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों, दोनों के प्रतिनिधि होंगे। उसके द्वारा निर्मित संविधान को निम्नलिखित दो शर्तों पर स्वीकार एवं कार्यान्वित करने का वायदा ब्रिटिश सरकार करती है: (क) जो भी प्रान्त इस नवीन संविधान को स्वीकार करने को तैयार नहीं होंगे, उन्हें अपना अलग संविधान बनाने का अधिकार होगा और उन्हें इंडियन यूनियन (भारतीय संघ) के समान ही दर्जा प्राप्त होगा, यही बात देशी राज्य या राज्यों पर लागू होगी; (ख) ब्रिटिश सरकार तथा संविधान निर्माणकारी निकाय के बीच एक सन्धि पारित की जाएगी जिसमें ब्रिटिश सत्ता को जिम्मेदार भारतीय हाथों में हस्तान्तरित करने के बारे में सभी विषयों का समावेश होगा।

3. बीच की अवधि में विश्व युद्ध के अंग के रूप में ब्रिटिश सरकार भारत की सुरक्षा अपने नियंत्रण में रखेगी, किन्तु भारत के सैनिक, नैतिक एवं भौतिक साधनों को संगठित करने के काम का उत्तरदायित्व भारत सरकार पर रहेगा, जिसमें वह जनता का सहयोग प्राप्त करेगी। इस उद्देश्य से वह अपने देश, राष्ट्रमण्डल तथा राष्ट्र-संघ की विचार मंडलियों में उसके नेताओं को भाग लेने के लिए निमंत्रित करेगी।

20 अप्रैल तक नेताओं से इन विषयों पर बातचीत होती रही। क्रिप्स गांधीजी से मिले। गांधीजी ने स्पष्ट कह दिया कि वह व्यक्तिगत हैसियत से मिल रहे हैं। कांग्रेस के प्रतिनिधि वे नहीं हैं। कांग्रेस के साथ जो बातें हुईं, उनमें मुख्यतः मौलाना अबुल कलाम आजाद, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और राजेन्द्र प्रसाद ने प्रतिनिधित्व किया। वैसे वे कांग्रेस कार्य समिति के अन्य सदस्यों से भी मिलते रहे।

गांधीजी ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स से कहा—यदि यही देना था तो आप आये ही क्यों? मेरी सलाह है कि आप पहले उपलब्ध हवाई जहाज से स्वदेश चले जाएं। गांधीजी ने उनकी योजना को भविष्य की तिथि का चेक (पोस्टडेटेड चेक) कहा। गांधीजी का प्रमुख रूप से कहना यह था— आप अभी क्या देते हैं? जब आप हमसे नैतिक सहायता की आशा करते हैं, तो यह तभी संभव है, जब भारत को अपने मामले में स्वाधीन रूप से निर्णय करने का अधिकार हो।

कांग्रेस ने क्रिप्स योजना को अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था कि यदि ब्रिटिश भारत को स्वतंत्र कर दिया जाए तो इसका प्रभाव अन्य राष्ट्रों एवं जापान पर भी पड़ेगा। जापान ने यदि स्वार्थवश आक्रमण किया तो हम नष्ट हो जाएंगे, किन्तु उसकी अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे। योजना स्वीकार न करने का एक और भी कारण था। क्रिप्स मिशन की योजना के अन्तर्गत देशी राज्यों की नौ करोड़ प्रजा को अपने भाग्य के निर्णय का अधिकार नहीं दिया जा रहा था। राजेन्द्र प्रसाद ने अपने सभापतित्व काल में देशी राज्यों को भी कांग्रेस के स्वराज्य आन्दोलन और भारत में प्रजातंत्र स्थापित करने में साथ कर लिया था। देशी राज्य भी भारत के अभिन्न अंग थे।

स्वतंत्रता भविष्य का नहीं, आज का सवाल है—यह कांग्रेस का फैसला था। इस फैसले को सुनकर सर स्टैफर्ड क्रिप्स वापस चले गए। उनके जाने के बाद गांधीजी 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के कार्यक्रम पर बहुत जोर देने लगे। उनकी वाणी और 'हरिजन' के अग्रलेख में नवीन ओज और प्रकाश का समावेश होने लगा। गांधीजी की इस वाणी से कांग्रेस असमंजस में पड़ गई। कांग्रेस क्या करे, इसके लिए अप्रैल 1942 के अन्त में इलाहाबाद में बैठक बुलाई गई। गांधीजी इसमें सम्मिलित नहीं हुए। उसी समय प्रसिद्ध पत्रकार लुई फिशर गांधीजी से मिलने सेवाग्राम आए थे। उनसे गांधीजी ने स्पष्ट कहा—भविष्य के वादों में मेरी दिलचस्पी नहीं है। युद्ध के बाद स्वतंत्रता में मेरी दिलचस्पी नहीं है। मैं तो आज स्वतंत्रता चाहता हूं। उससे इंग्लैण्ड को लड़ाई जीतने में सहायता मिलेगी। गांधीजी अपनी इस वाणी को तीव्र गति से तेज करते जा रहे थे। अपनी इस वाणी और 'हरिजन' पत्र के माध्यम से उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता को अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बना दिया था। उन्होंने सभी राष्ट्रों और उनके नेताओं के नाम खुली चिट्ठी लिखी। च्यांग-काई-शेक, हिटलर, रूजवेल्ट, चर्चिल के नाम पत्र भेजे।

इधर इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस की बैठक चल रही थी। कांग्रेस में गांधीजी की वाणी और पूर्ण स्वतंत्रता की बेचैनी की प्रतिक्रिया थी। कांग्रेस अपने ढंग से ब्रिटिश सरकार को चेतावनी देना चाहती थी। गांधीजी चेतावनी के बजाय 'अंग्रेज भारत छोड़ो' का नारा दे चुके थे। उन्होंने कांग्रेस से भी यह नारा अपनाने को कहा। गांधीजी ने सेवाग्राम से मीरा बहन के साथ एक प्रस्ताव का प्रारूप राजेन्द्र प्रसाद के नाम भेजा। राजेन्द्र प्रसाद ने गांधीजी के भेजे प्रस्ताव को कार्य समिति के सामने रखा। इस पर बहुत वाद-विवाद हुआ। इस प्रस्ताव पर वहां दो मत थे—एक गांधीजी के प्रस्ताव के पक्ष में और दूसरा उनका था जो उतनी दूर नहीं जाना चाहते थे। राजेन्द्र प्रसाद उसमें थोड़ा संशोधन लाकर भी गांधीजी के प्रस्ताव को पास कराना चाहते थे। यह जानकारी प्राप्त की गई कि उस प्रस्ताव के पक्ष-विपक्ष में कितने लोग हैं। अन्त में गांधीजी के प्रस्ताव के पक्ष में बहुमत आ गया। राजेन्द्र प्रसाद इस प्रस्ताव को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने रखते, किन्तु उन्होंने वहां रखना मुनासिब नहीं समझा। राजेन्द्र प्रसाद का प्रस्ताव पास होने पर भी उस प्रस्ताव के पक्ष में कुछ सदस्य नहीं थे, खासकर मौलाना अबुल कलाम आजाद, अतः उन्होंने अपने पद से हट जाने की इच्छा जाहिर की। उनका कहना था कि उनके प्रस्ताव के गिरने का अर्थ है कि कार्य समिति का उन पर विश्वास नहीं है, ऐसा वे मानते हैं। ऐसी हालत में राजेन्द्र प्रसाद ने अपने प्रस्ताव को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में रखना वाजिब नहीं समझा। पास किया हुआ प्रस्ताव उन्होंने वापस ले लिया, क्योंकि उन्होंने कार्य समिति के उस विभाजन एवं मतभेद को प्रदर्शित करना वाजिब नहीं समझा। कार्य-समिति में ही अपने प्रस्ताव को राजेन्द्र प्रसाद ने वापिस ले लिया। कार्य-समिति का प्रस्ताव जो मौलाना अबुल कलाम आजाद की

तरफ से पेश हुआ था, उसी को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने पास होने दिया। यथाशक्ति अनावश्यक टकराव से बचना तथा मध्य मार्ग पर चलना, यह राजेन्द्र प्रसाद के स्वभाव की विशेषता थी। दूसरों को मान देना उनका एक बड़ा गुण।

राजेन्द्र प्रसाद इलाहाबाद से वर्धा गए। गांधीजी को इलाहाबाद की सारी बातें बताईं। गांधीजी राजेन्द्र प्रसाद द्वारा प्रस्ताव वापस ले लेने की जानकारी पाकर प्रसन्न हुए, कहा—यह बुद्धिमत्ता की बात रही। अब मौलाना साहब और जवाहरलाल को यहां आने को लिखता हूं। मैं उन लोगों के सामने अपनी बात रख कर आगे का कार्यक्रम निश्चित करना चाहता हूं।

मई के प्रारंभ में गांधीजी से मिलने मौलाना अबुल कलाम आजाद, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और कृपालानी वर्धा पहुंचे। उन्होंने इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने जो भी हुआ, उससे गांधीजी को अवगत कराया। राष्ट्रीय नेताओं ने अपना-अपना दृष्टिकोण गांधीजी के सामने रखा। इसके पूर्व ही सारी बातों की जानकारी राजेन्द्र प्रसाद से गांधीजी को मिल चुकी थी। गांधीजी ने उनसे कहा कि, अब मैं ब्रिटिश सरकार से भारत छोड़ने के लिए कहने में देर करना नहीं चाहता। इस आवाज को कांग्रेस के माध्यम से पहुंचाना चाहता हूं। गांधीजी पिछले एक साल से अपनी इस इच्छा के प्रति दृढ़ होते जा रहे थे। उन्होंने कहा, "मेरी जिन्दगी की यह आखिरी लड़ाई होगी। इस लड़ाई के पीछे अहिंसा को छोड़ना नहीं है।" गांधीजी का कहना था कि मेरी अहिंसा के पीछे सारा देश होगा। कांग्रेस अहिंसक फौज के रूप में तैयार हो जाए। उस समय गांधीजी की वाणी में ओज था। यह उनके अन्तःकरण की आवाज थी। गांधीजी की मनोदशा को कांग्रेस के नेता समझ गए। गांधीजी के इस 'करो या मरो' के पीछे कांग्रेस ने अपने को उनके साथ जोड़ दिया।

जुलाई के पहले सप्ताह में वर्धा में कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक हुई। वहां 'गांधीजी का अगला कदम' विषय पर विचार हुआ। आजादी की अंतिम लड़ाई के लिए उनका कदम उठ चुका था। उस कदम पर चलने के लिए कांग्रेस राजी हो गई। कार्य समिति की अन्तिम बैठक में गांधीजी नहीं आए। बम्बई में 15 अगस्त को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक करने का निश्चय हुआ। कृपालानीजी गांधीजी से मिलने सेवाग्राम गए। उस दिन उनका मौनव्रत था। बम्बई में 15 अगस्त को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाए जाने की बात सुनकर गांधीजी ने कागज पर एक अगस्त लिख दिया। कृपालानी ने मौलाना आजाद से कहा कि गांधीजी एक अगस्त चाहते हैं। मौलाना समझ गए कि यह गांधीजी की जल्दीबाजी और बेचैनी का स्पष्ट प्रमाण है। अन्ततः इतने कम समय में कांग्रेस की तैयारी और सभी सदस्यों को खबर भेजने की कठिनाई को मद्देनजर रखकर आठ अगस्त का दिन निश्चित किया गया।

गांधीजी ने दूसरे दिन कहा: "मैंने एक अगस्त जल्दीबाजी की वजह से नहीं तय की। बल्कि इस तारीख के पीछे एक उद्देश्य है। एक अगस्त लोकमान्य तिलक का जन्म-दिन है। स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है इसका हमें भी इसी दिन बिगल बजाना है।" गांधीजी स्वराज्य लाने में सिद्धपुरुष थे। कब किस प्रकार का आन्दोलन छेड़ना चाहिए, इसकी गजब की सूझ-बूझ उनमें थी। वे अपने अहिंसक बाण को बेकार फेंकना नहीं चाहते थे। अतः वे अपने इस बाण को कांग्रेस के धनुष से चलाना चाहते थे। उन्होंने कांग्रेस का अन्तिम फैसला मान लिया। राजेन्द्र प्रसाद वर्धा ठहर गए। प्रतिदिन एक

सप्ताह तक वे गांधीजी से भविष्य का कार्यक्रम जानने का प्रयत्न करने के उद्देश्य से सेवाग्राम जाते रहे। गांधीजी का कहना था कि इस बार मेरे साथ कांग्रेस की भी परीक्षा है। उसको तूफान के लिए तैयार रहना होगा। प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ भी हो सकता है। कांग्रेस को दमन, यातना और दंड का मुकावला करना है। युद्ध की सारी ताकत कांग्रेस पर इस्तेमाल की जा सकती है। वे दूसरी तरफ की सारी बातों की चेतावनी एवं चुनौती से तो राजेन्द्र प्रसाद को अवगत कराते थे, किन्तु कांग्रेस को क्या करना है, यह बताने में रुक जाते थे। अन्त में उन्होंने कहा, "कांग्रेस को भी सब कुछ करना है। 'करो या मरो' यही फैसला करना है। इसके लिए भी हमारा हथियार अहिंसा का होगा। यह ऐसा हथियार है, जो कायर के हाथ में नहीं पड़ सकता। हिंसा का हथियार इस्तेमाल करने वालों से अधिक ताकत हमें अपने में भरनी होगी। ब्रिटिश सरकार के सारे दबाव और प्रतिबन्धों पर काबू पाना होगा। अपनी जवाबी व्यवस्था बनानी होगी। ऐसा मालूम पड़े कि कांग्रेस जनता की है और सम्पूर्ण भारत उसके पीछे है। ब्रिटिश सरकार बेकार सिद्ध हो जाए, ऐसी स्थिति बनानी है। युद्ध भारत के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। उसका भी मुकाबला करना है। हम एक से छूट कर दूसरे के हाथ में न चले जाएं, यह सबसे बड़ी चुनौती है।"

गांधीजी के इस भयावह इशारे को पाकर राजेन्द्र प्रसाद बिहार लौटे। वर्धा में ही उन्होंने पूरे बिहार के दौरे का कार्यक्रम तय कर लिया। वहीं सदाकत आश्रम को खबर भेज दी। राजेन्द्र प्रसाद के दौरे का पहला मुकाम छपरा था। पन्द्रह दिनों तक लगातार पूरे बिहार का दौरा करते रहे। दिन में तीन-चार जगहों पर सार्वजनिक सभा करते। गांधीजी से मिले मार्गदर्शन से बिहार की जनता को अवगत कराते। राजेन्द्र प्रसाद का भाषण संगत होता, किन्तु निकट भविष्य का संकेत चुनौती का था। हम सब को संदेह होता कि कहीं इन भाषणों के आरोप में ये गिरफ्तार न कर लिए जाएं। राजेन्द्र प्रसाद शोले भी उगलते थे, तो वह शबनम का रूप लिए होते थे। वे विद्रोह की सीख नहीं देते थे। आत्मनिर्भर होने तथा इस तरह आत्मविश्वास और आत्मशक्ति सम्पादित करने को कहते थे। आन्दोलन के प्रति सरकार की प्रतिक्रिया और जनता के जान-माल की व्यवस्था की जवाबदेही हम स्वयं उठावें। वे भोजन और वस्त्र के मामले में स्वावलम्बी होने पर विशेष जोर देते थे। मोहल्ले-मोहल्ले में शान्ति सेना गठित करने को कहते। बाहरी और भीतरी हमलों से रक्षा पाने का रास्ता बताते, इस युद्ध में हमारी रक्षा ब्रिटिश सरकार करेगी, इस उम्मीद को भुलाकर, हम अपनी रक्षा और अपनी हिफाजत स्वयं करें, इसके लिए तैयार रहने को कहते। बीस दिनों तक तूफानी दौरे के बाद वे 4 अगस्त को सदाकत आश्रम लौटे। बरसात का समय था। आते ही बीमार हो गए। दमे का दौरा पड़ा, अतः आठ अगस्त वाली बैठक में बम्बई नहीं जा सके।

इस अध्याय में संक्षेप में राजेन्द्र प्रसाद के जीवन का वह वृत्तांत दिया गया, जिससे पता चलता है कि अखिल भारतीय कांग्रेस की गतिविधियों में उनकी क्या भूमिका रही। कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में हो, या कांग्रेस की कार्य-समिति के सम्मानीय सदस्य के रूप में हो अथवा एक साधारण स्थानीय नेता के रूप में हो, राजेन्द्र प्रसाद ने सभी जगह अपनी विशिष्ट भूमिका निभाई। सच तो यह है कि गांधीजी की आस्था उनमें पूरी तरह उतर गई थी। सत्य और अहिंसा के व्याख्याता तो बहुत हो गए हैं, उसे कार्य-सिद्धि के लिए साधन के रूप में प्रयुक्त करने वाले भी अनेक हो गए हैं, पर सत्य और अहिंसा को मनसा, वाचा, कर्मणा अपनाने वाले विरले ही हुए हैं। गांधीजी के बाद इस भूमिका में प्रभावशीलता के साथ केवल राजेन्द्र प्रसाद ही खरे उतरे, इस कथन में अत्युक्ति नहीं।

11. जेल-जीवन

स्वतंत्रता सेनानियों के लिए जेल जाना तो आम बात थी। उनका एक पैर जेल में रहता। पर अगस्त 1942 की परिस्थितियां ऐसी थीं कि उन्हें कुछ अधिक समय तक जेल में रोके रहना सरकार के लिए अनिवार्य हो गया। वस्तुतः जेल जीवन स्वतंत्रता सेनानियों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। लोकमान्य तिलक ने गीता रहस्य जेल में ही लिखी। नेहरू जी ने भी जेल के दिनों का पढ़ने-लिखने में उपयोग किया। राजेन्द्र प्रसाद ने भी अपनी आत्मकथा वहीं पूरी की। 'इंडिया डिवाइडिड' भी वहीं लिखी गई। जेल में उन्हें पढ़ने-लिखने के अलावा भी स्वचिन्तन का काफी मौका मिला। तरह-तरह के लोगों से मेल मुलाकात हुई। उससे उनकी जानकारी में काफी बढ़ोतरी हुई।

राजेन्द्र प्रसाद बीमारी की अवस्था में ही 9 अगस्त को सवेरे सदाकत आश्रम (पटना) में गिरफ्तार हुए। पटना जिला जेल में नजरबन्द किए गए। जेल-जीवन में उनके मुख्य चार काम देखने को मिले। बीमारी की अवस्था में शान्त पड़ा रहना, दूसरों से कुछ सुनना, चर्खा चलाना, पुस्तक लिखना। समय पर उठते और नियमित समय पर तैयार होकर अपने इन्हीं कार्यों में जुट जाते। कभी-कभी सप्ताह-पन्द्रह दिनों के लिए कुछ राजनैतिक कैदी उस जेल में लाकर रखे जाते। उनसे बातचीत करते। उनकी सुनते, अपनी कहते। वे एक महीने तक प्रतिदिन एक घंटा गांधीजी पर बोलते रहे। उसी के फलस्वरूप 'बापू के कदमों में' लिखा गया। कुछ दिनों के बाद बाहर की खबरें आने लगीं। अखबार मिलने लगे। बंगाल दुर्भिक्ष की दुर्दशा में बुरी तरह फंस गया था। अन्न के बगैर लोग मर रहे थे। हालत यहां तक पहुंच गई थी कि सड़कों पर लोग मरने लगे। राजेन्द्र प्रसाद का कोमल हृदय ऐसी खबर पढ़कर रो पड़ा। हम लोगों ने उनकी ऐसी दशा को देखकर सोचा कि इन्हें अखबार पढ़ने न दें, तो अच्छा है। वे अखबार पढ़ने से अपने को रोक भी नहीं सकते थे। पढ़ते और रोते, कहते, बंगाल की ऐसी हालत पर हम लोग लाचार हो गए हैं। वहां के लोगों पर न जाने और क्या-क्या गुजरती होगी। खबरें भी तो खुलकर नहीं छपती हैं। फिर 'इंडिया डिवाइडिड' लिखने लग गए। चार घंटे चरखा चला लेते थे। उसी समय वे लिखाते भी थे। कुछ पढ़कर सुनाया भी जाता था। महाभारत, उपनिषद, स्मृति, भागवत पढ़ गए। हम लोग चार तो एक साथ स्थायी रूप से थे। बीच-बीच में और राजनैतिक कैदी हजारीबाग से डाक्टरी जांच कराने अथवा इलाज के लिए पटना लाए जाते। वे लोग भी बांकीपुर जेल के अस्पतालों में रखे जाते। हालांकि दस-पन्द्रह दिनों से अधिक उन लोगों को वहां ठहरने नहीं दिया जाता था, पर जितने दिन वे लोग राजेन्द्र प्रसाद के समीप रहते, गर्व का अनुभव करते। राजेन्द्र प्रसाद को भी आनन्द

मिलता। कार्य-समिति के प्राय: सभी सदस्य अहमदनगर कोर्ट रखे गये थे। लिनलिथगो का आदेश आया कि राजेन्द्र प्रसाद को अहमदनगर जेल भेजा जाये। पटना के डाक्टरों ने हवाई सफर करने से मना कर दिया। बिहार की सरकार ट्रेन से भेजना नहीं चाहती थी। अत: वे पटना जेल में ही रहे।

राजेन्द्र प्रसाद वहां के सम्बन्ध में लिखते हैं "मेरे जेल जाने पर मैंने देखा कि बहुतेरे भाइयों के पास चिट्ठियां लुक-छिप कर आ जाती थीं। मैंने इस तरह से कभी कोई चिट्ठी नहीं ली। मुझे नहीं मालूम था कि पुस्तकों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कड़ा नियम है। मैंने जेलर से कुछ पुस्तकें मंगवाईं और उसने लाकर मेरे पास रख दी। एक दिन खबर मिली कि जेल का सबसे बड़ा अफसर (आई.जी.) आएगा। जेलर ने कहा पुस्तकों को मैं अपने पास ले जाकर रखूंगा और आई.जी. के चले जाने पर, फिर पहुंचा दूंगा। मेरे दिल में शक हुआ, मैंने पूछा—ये नियमित रूप से नहीं आई हैं? जेलर ने कहा कि आप लोगों की मदद के लिए कुछ अनियमित काम करना, झूठ बोलना एक प्रकार से पुण्य का काम समझता हूं। मैंने पुस्तकें वापस कर दीं और उनको फिर मेरे पास भेजने की मनाही कर दी।" स्पष्ट है कि वे इतने अनुशासनबद्ध थे कि किसी प्रकार का नियम उल्लंघन करना उन्हें सहन नहीं था।

मानव के जीवन में चरित्र की एक कसौटी जेल-जीवन भी है। इस सम्बन्ध में खान अब्दुल गफ्फार खां ने (सीमान्त गांधी राजेन्द्र प्रसाद के जेल-जीवन में साथी रहे) संविधान सभा में बोलते हुए कहा था, "मैं राजेन्द्र प्रसाद जी को खूब जानता हूं और यह कह सकता हूं कि जो लोग कैद में मुसीबतों और तकलीफों की जगहों में इकट्ठे होते हैं, उनको मौका मिलता है कि एक दूसरे को पहचानें। चुनांचे, मुझे इसका फख्र है कि बाबू राजेन्द्र प्रसाद के साथ जेल में काफी मुद्दत रहा हूं। मैं इनकी आदतों से वाकिफ़ हूं और मैं यह कह सकता हूं कि सबसे बड़ी तारीफ जो उनकी है, और जिसकी हर हिन्दुस्तानी को जरूरत है, वह यह है कि इनके दिल में भेद-भाव नहीं है। बदकिस्मती से हम हिन्दुस्तानियों के दिल में भेद-भाव और खराबियां हैं। आप जानते हैं कि एक खाना हिन्दू के लिए और दूसरा मुसलमान के लिए है। मैं यह दावे से कह सकता हूं कि बाबू राजेन्द्र प्रसाद का दिल सबके लिए एक है। वे हर तरह के भेद-भाव से ऊपर हैं।"

जेल में कुछ भी एक दूसरे से छिपाया नहीं जाता। हमारे निजी भाव, जिन्हें हम गुप्त रखना चाहते हैं कभी-न-कभी, दूसरों के सामने प्रकट हो ही जाते हैं। जेल में ही पता चला कि राजेन्द्र प्रसाद धर्मात्मा और सांस्कृतिक पुरुष हैं। राजनीति का नम्बर उसके बाद ही आता है। मानवीयता इनमें कूट-कूट कर इतने सहज रूप से भरी हुई थी कि व्यवहार में उसे लाने के लिए उन्हें कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता था। राजेन्द्र प्रसाद के व्यक्तित्व में दार्शनिक-की-सी तीक्ष्ण बुद्धि और बालक-की-सी नितान्त सरलता समन्वित थी।

मनुष्य सब जगह धीर बने रह सकते हैं, किन्तु जेल एक ऐसी जगह निकलती है, जहां विशिष्ट मनुष्य भी अधीर हो जाते हैं। बहुत कम इस जीवन की कसौटी पर खरे उतरते हैं। राजेन्द्र प्रसाद का जेल-जीवन हर तरह से निर्दोष नजर आया। वे जेल में निश्चिंत रहते थे। वहां उनको किसी प्रकार की चिन्ता नहीं सताती थी। कई बार पूछा—यहां क्या सोचते हैं? हर बार एक ही उत्तर मिला—"कुछ नहीं। सरकार ने यहां लाकर रख दिया है, रहना है। जिस हालत में रखेगी, वैसे ही रहना, यही ध्यान

रखना है। यहां के समय का सदुपयोग कर लेना चाहिए। इतना अच्छा निश्चिन्त समय कब और कहां मिलता है? यहां दो तरह के लाभ भली-भांति उठाए जा सकते हैं। एक तो शारीरिक, दूसरा मानसिक अथवा बौद्धिक। यहां स्वास्थ्य को काफी सुधारा जा सकता है। जीवन की, दैनिक दिनचर्या को, खाने-पीने तथा रहने की व्यवस्था को सुधारा जा सकता है। यहां अपने जीवन को इतना व्यवस्थित कर लिया जा सकता है कि बिहार के कोलाहल और व्यस्त समय में भी यह उपलब्धि काम आ जाए। ऐसे लोग हैं, जो कहते हैं कि हमारी कुछ ऐसी आदतें पड़ गई हैं, जो छूट नहीं रही हैं। उनके लिए जेल में व्यवस्थित जीवन बनाने और उन आदतों से छुटकारा पाने का अच्छा मौका मिलता है। यहां का बनाया हुआ जीवन या आदतें उनके बाकी जीवन को सुखमय बना सकते हैं।" राजेन्द्र प्रसाद केवल सैद्धांतिक बात कहते नहीं थे, बल्कि जेल जीवन में अपना कार्यक्रम भी उसी तरह का रखते थे, जिससे दूसरों को भी अपना कार्यक्रम व्यवस्थित करने में सहायता मिलती थी। उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर था ही नहीं।

स्वतंत्रता आन्दोलन के आखिरी दिनों में एक महत्वपूर्ण घटना घटी। यह घटना थी जयप्रकाश नारायण, योगेन्द्र शुक्ल तथा शालीग्रामजी का एक रात अचानक हजारीबाग जेल से भाग निकलना। एक सनसनीपूर्ण घटना थी। तीनों विख्यात देश-भक्त थे। इन लोगों का जीवन देश-सेवा के लिए अर्पण था। देश-भक्ति से अनुप्राणित होकर जान को खतरे में डाल कर जेल से निकल भागना हुआ था। भागने के बाद महीनों जंगल, पहाड़, नदी-घाटी और गांव-गांव में तरह-तरह के भेष बनाकर घूमते रहे। घूमते हुए भी स्वतंत्रता-आन्दोलन की आग जलाते रहे। सारे भारत में इनको पकड़ने के लिए सी.आई.डी. के जाल बिछाए गए। हर जमाने में देश-भक्ति और परदेश-भक्त एक साथ होते आए हैं। ऐसे राजभक्तों के अथक परिश्रम से ये तीनों देश-भक्त अलग-अलग फिर से गिरफ्तार कर लिए गए।

योगेन्द्र शुक्ल बिहार में ही गिरफ्तार हुए। वे बांकीपुर (पटना) में रखे गए। इसी जेल में राजेन्द्र प्रसाद भी थे। योगेन्द्र शुक्ल को जेल में अलग से बन्द रखा गया था। उन्हें किसी से मिलने नहीं दिया जाता था। केवल राजेन्द्र प्रसाद से मिलने की वैसी सख्ती नहीं थी। शुक्लजी राजेन्द्र प्रसाद से मिलने आते थे। एक दिन शुक्लजी ने तीनों साथियों के साथ जेल से भागने की कहानी इन्हें सुनानी चाही। राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—"अच्छा होगा तुम अपनी बात अपने तक ही रहने दो। मुझसे भी न कहो। इसलिए कि अभी तुम्हारा मुकदमा चलने वाला है। उसमें तरह-तरह की बातें उठाई जाएंगी। कई गवाह लाए जाएंगे। सरकार मुझसे भी पूछे कि आप तो शुक्ल से मिलते थे। आपसे भी तो उन्होंने अपनी बात बताई होगी। आपको उसकी जानकारी होगी। उन लोगों का पूछना कई ढंग से होता है। न जाने मुझसे क्या जान लें। इसलिए मैं तुम्हारी बात जानना नहीं चाहता हूं।" शुक्लजी को थोड़ा आश्चर्य हुआ। उनके बड़प्पन की इस बात को वे समझ गए। फिर उन्होंने इस बात का कोई जिक्र नहीं किया।

राजेन्द्र प्रसाद का योगेन्द्र शुक्लजी की बात न सुनने का एक और अभिप्राय था। उन्होंने उसे शुक्लजी से न कहकर हम लोगों से कहा। कहते थे, "इन्सान में कई तरह की कमजोरियां होती हैं। उनमें से एक यह भी है कि बहुत-सी बातें और बहुत तरह की बातें सबके पेट में पचती भी नहीं हैं। मुझको इसका भी डर हुआ कि शुक्लजी की बातें सुन लेने के बाद बातचीत के सिलसिले में मैं तुम

लोगों से उनकी बात कह देता, जो ठीक नहीं होता। शुक्लजी की बात बहुत ही गोपनीय और रहस्य की होगी। इसलिए मैंने उचित समझा कि मैं उसे न सुनूं। यद्यपि हम लोग उन्हें नजदीक से जानने का दावा करते थे फिर भी ऐसा जानकर हम लोगों को आश्चर्य हुआ। हम लोग सोचते रहे कि वे वैसी दिलचस्प बातों को सुनने का लोभ कैसे संवरण कर सके। उनके इस व्यवहार में जहां सत्य का आग्रह था, वहां अहिंसा की भावना भी कम न थी। इस निर्णय में ये कितने सावधान थे, यह उसकी एक मिसाल है।

अपनी कैद के दौरान राजेन्द्र प्रसाद बंगाल की भयंकर अकाल की खबरें पढ़कर असाधारण रूप से विचलित हो उठे थे। कुछ दिनों के बाद उन्हें पूना के आगा खां महल में कैद महादेव देसाई और बाद में बा (कस्तूरबा) के निधन का समाचार मिला। इन दुःखद समाचारों को सुनकर वे व्यथित हो उठे। महादेव भाई और बा की क्षति गांधीजी की व्यक्तिगत क्षति थी। इससे भी बढ़कर राष्ट्रीय क्षति थी। इसे केवल विधि का विधान मानकर सब्र करना किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के लिए संभव न था। राजेन्द्र प्रसाद तो इन दोनों दिवंगत आत्माओं से निकटतः जुड़े हुए थे।

9 अगस्त, 1942 से 15 जून, 1945 तक राजेन्द्र प्रसाद जेल में रहे इस बीच गंगा-यमुना में काफी पानी बह गया। द्वितीय विश्व युद्ध उग्र से उग्रतर होकर अन्ततः निर्णायक समाप्ति पर आ गया था। भारतीय जनता क्रूर नौकरशाही के हाथों भयंकर अत्याचार भोगकर विदेशी दासता से मुक्त होने के लिए कृतसंकल्प हो चुकी थी। सरकार का दमन चक्र उसके मनोबल को तोड़ने में समर्थ न हो सका। प्रत्युत, जितना उसे कुचलने का प्रयास किया गया, उतना ही मनोबल बढ़ा। नेताजी की आजाद हिन्द फौज की गतिविधियों ने और बम्बई के नाविक विद्रोह ने, जहां ब्रिटिश सरकार को हिलाकर रख दिया, वहां भारतीय जनता को एक शुभाशा से भर दिया। यह शुभाशा थी—विदेशी दासता से मुक्ति।

12. अन्तरिम सरकार में

15 जून, 1945 को राजेन्द्र प्रसाद बांकीपुर जेल से छूटे। अहमदनगर किले के सभी नेताओं को रिहा किया गया। 20 जून को सभी को पूना पहुंचना था। राजेन्द्र प्रसाद के साथ हम लोग पूना जा रहे थे। दूसरे दर्जे में हम लोग चारों एक साथ थे। रास्ते में 'इंडिया डिवाइडिड' की पाण्डुलिपि को बम्बई के एक प्रकाशक को देने की योजना थी। राजेन्द्र प्रसाद उसका अवलोकन कर रहे थे। झांसी स्टेशन पर जवाहरलाल नेहरू राजेन्द्र प्रसाद से मिलने आए। मालूम हुआ कि वे भी इसी गाड़ी में चल रहे हैं। उन्होंने पूछा, "राजेन्द्र बाबू यह क्या हो रहा है?" जवाब में बताया गया कि, उन्होंने जेल में 'इंडिया डिवाइडिड' लिखा है। इसको बम्बई में हिन्द किताब को प्रकाशित करने के लिए देना है। जब राजेन्द्र प्रसाद ने पूछा आप किस डिब्बे में हैं, तो उन्होंने कहा "मैं तो गाड़ी के सबसे पीछे वाले डिब्बे में हूं। मेरा डिब्बा पूंछ की तरह हिलता-हिलाता चलता है।" सुनकर सभी लोग हंस पड़े।

पूना में कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक तीन-चार दिनों तक चलती रही। वहीं खबर मिली कि शिमला में वाइसराय ने सबको मिलने के लिए आमंत्रित किया है। इसी बीच लिनलिथगो की जगह लॉर्ड वैवल भारत के वाइसराय होकर आए। थोड़े समय के बाद ब्रिटिश ताज की तरफ से तीन अधिकारी—सर स्टैफर्ड क्रिप्स, पैथिक लारेंस और अलेग्जेंडर भारत आए। भारतीय नेताओं के साथ इनकी कई पहलुओं पर प्रत्येक दृष्टिकोण से बातें हुईं। इन सारी बातों के पीछे भारत को पूर्ण स्वतंत्रता देने की बात थी। ब्रिटिश सरकार भारत को कई टुकड़ों में बंटा मानती थी। उसके दृष्टिकोण से एक हिस्सा ब्रिटिश भारत का, दूसरा हिस्सा देशी रजवाड़ों का, तीसरा मुसलमानों का और चौथा फुटकर अल्पसंख्यकों का। इस प्रकार वे भारत को अलग-अलग हिस्सों में बांटकर यहां से जाना चाहती थी। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर उसकी दो योजनाएं प्रकाशित हुईं थीं। एक 16 मई, 1946 को, जिसे दीर्घकालीन योजना कहा गया था। दूसरी 16 जून, 1946 को जो अन्तरिम सरकार बनाने से सम्बन्धित थी।

इन दोनों योजनाओं के पीछे मुस्लिम लीग की धोखा-धड़ी चलती रही। मुस्लिम लीग के नेता श्री जिन्ना कांग्रेस के नेताओं के साथ मिलकर काम करना नहीं चाहते थे। इसलिए दीर्घकालीन योजना को लीग ने नामंजूर कर दिया। वे मुसलमानों के प्रतिनिधियों के साथ अलग बैठकर संविधान बनाना चाहते थे। कांग्रेस की ओर से कहा गया कि वह मुस्लिम प्रतिनिधि भेजें और साथ बैठकर
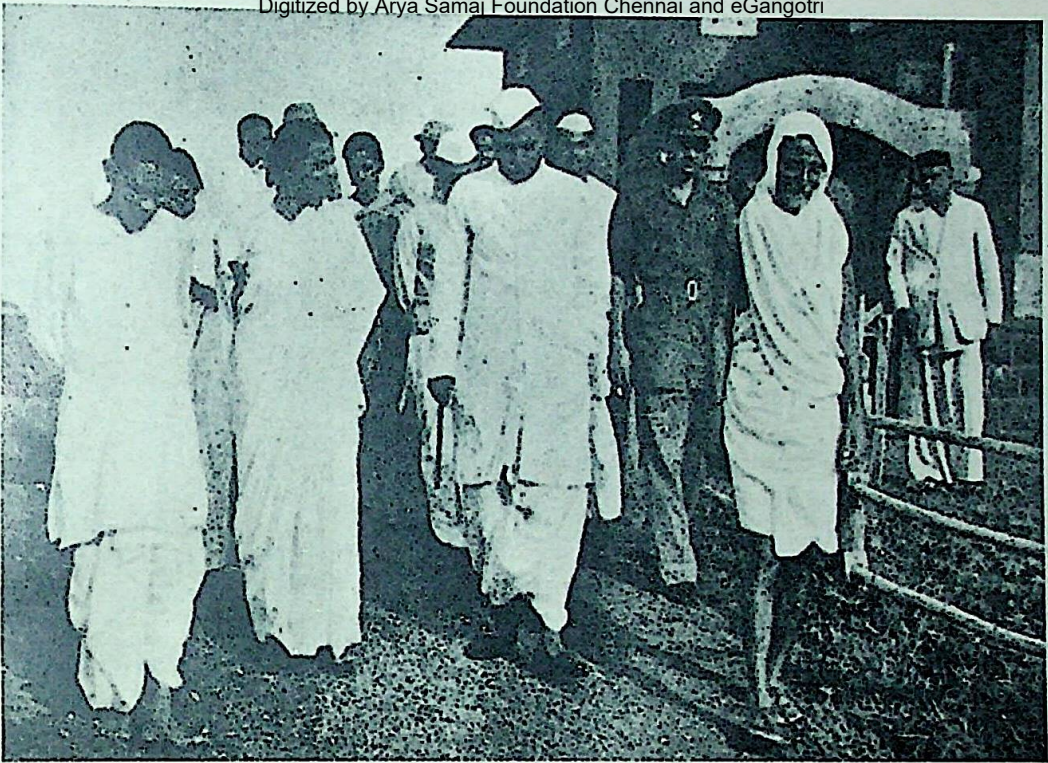
राजेन्द्र बाबू आचार्य विनोबा भावे के साथ

मध्यप्रदेश में पटटाभि सीतारामैया (राज्यपाल) तथा मुख्यमंत्री रविशंकर शुक्ल के साथ राजेन्द्र बाबू

राष्ट्रपति चर[illegible] [illegible] [illegible]ए
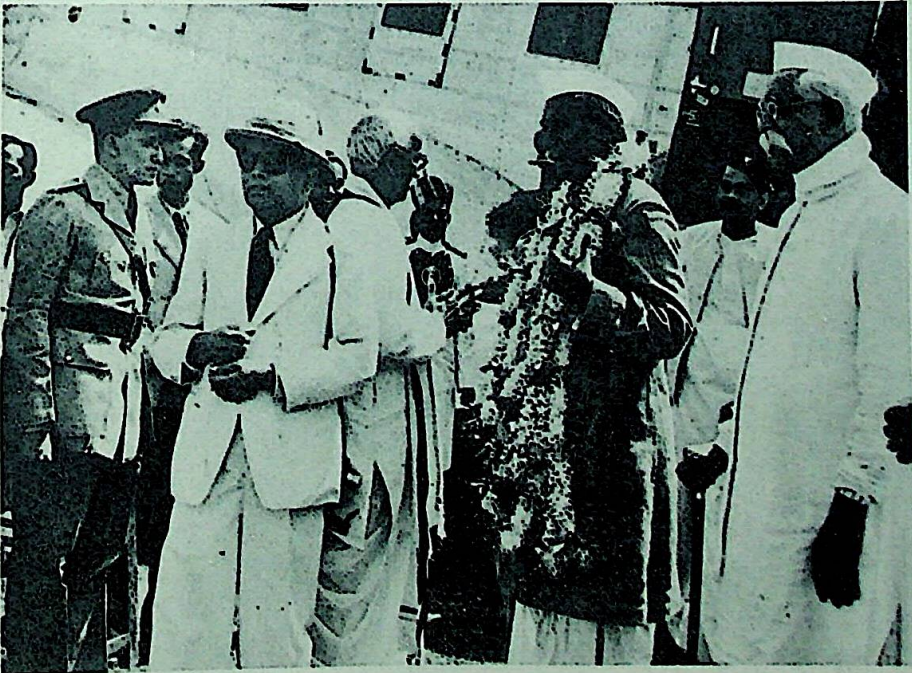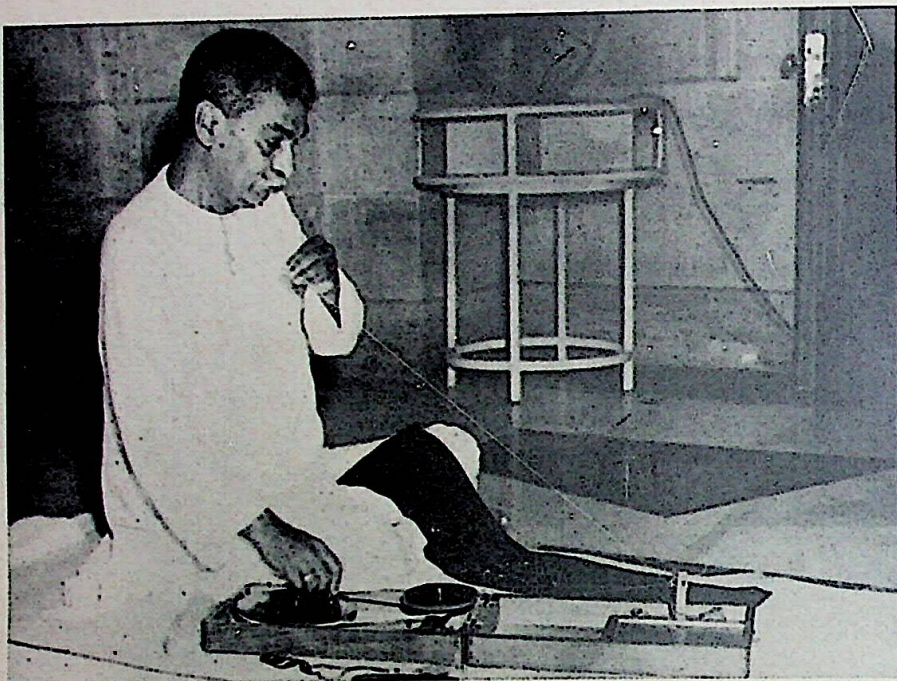
रामेश्वरम में धनुषकोटि के सागर-तट पर पवित्र अनुष्ठान सम्पन्न करते हुए
(कुर्सी पर डा० राजेन्द्र प्रसाद और उनके पास उनकी धर्मपत्नी राजवंशी देवी, पौत्र अरुण तथा अन्य परिजन)
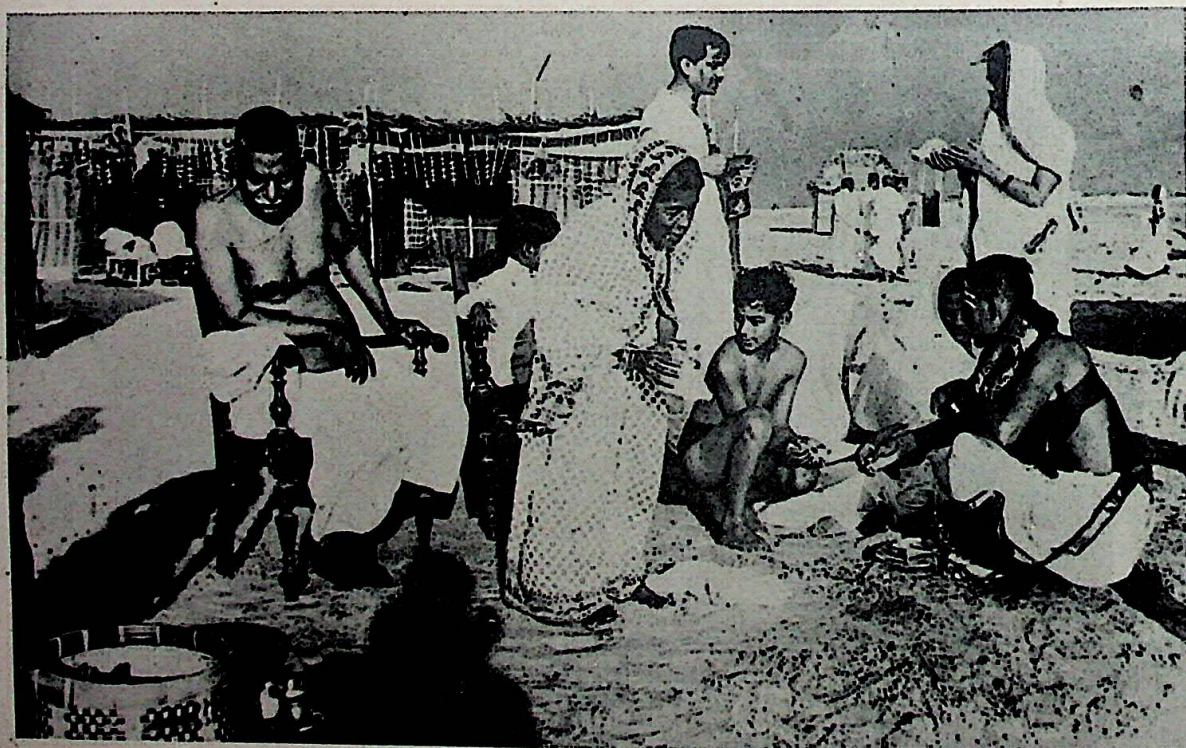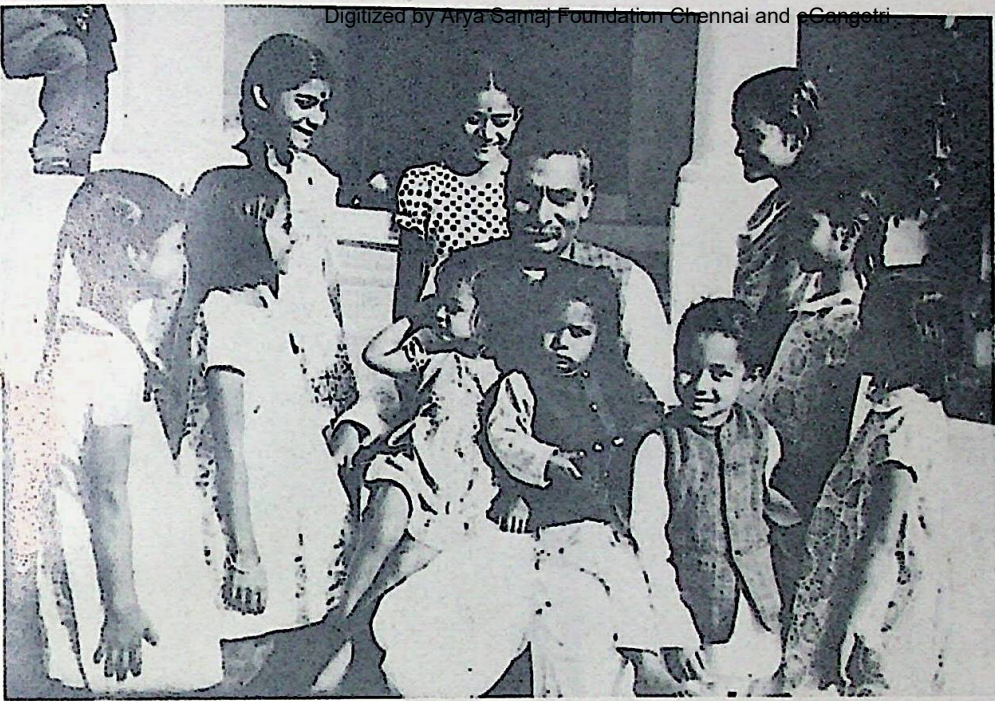
.राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद परिवार के बच्चों के बीच
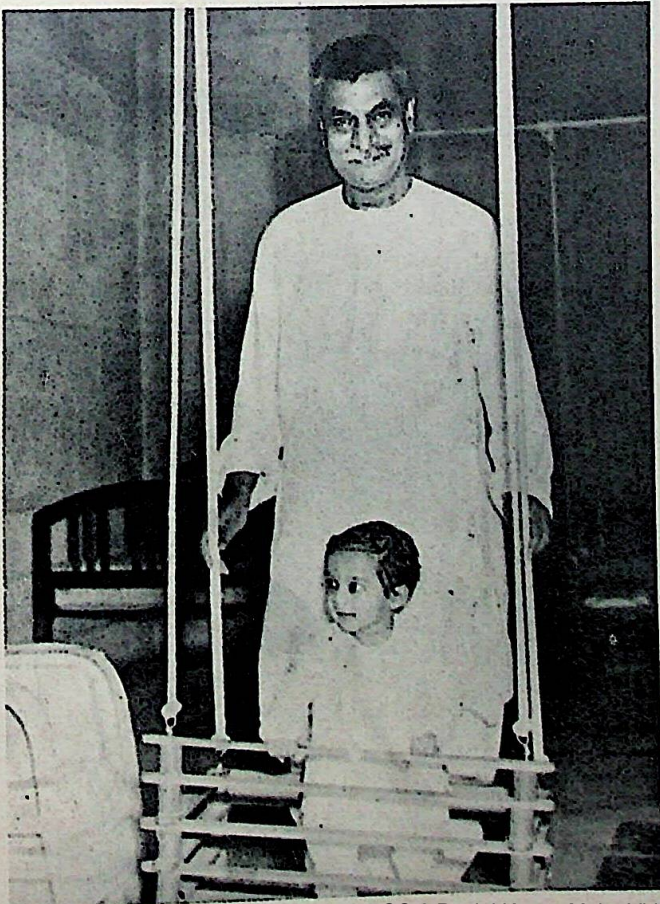
राजेन्द्र बाबू अपने पौत्र अरुण के साथ
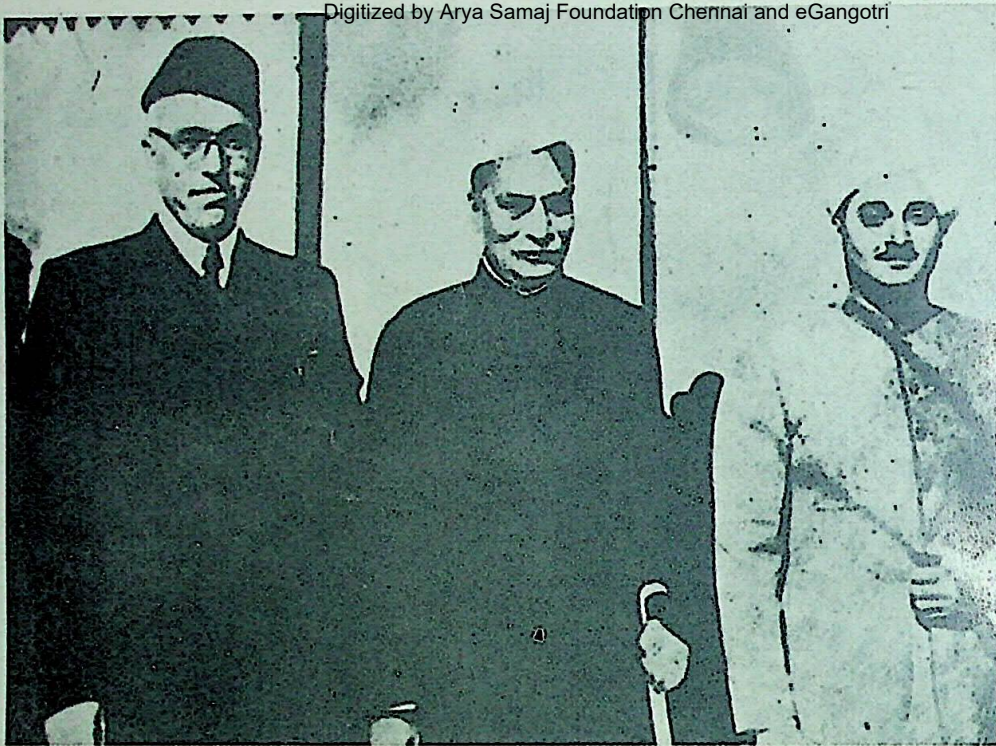
कश्मीर में वजीरे आजम शेख अब्दुल्ला और सदरे रियासत कर्णसिंह के साथ राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद

जयपुर हवाई अड्डे पर राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद और उनकी पत्नी का स्वागत करते हुए राजस्थान के राजप्रमुख और महारानी गायत्री देवी

भारत का संविधान तैयार करें। लीग इस पर भी राजी नहीं हुई। वाइसराय ने कांग्रेस के नेता जवाहरलाल नेहरू (कांग्रेस अध्यक्ष) को बुलाया। उनसे कहा गया कि केन्द्र में अन्तरिम सरकार बनाई जाए। जवाहरलाल नेहरू ने श्री जिन्ना को इस सरकार में सम्मिलित होने के लिए लिखा। किन्तु वे इन्कार कर गए। ऐसी हालत में वाइसराय ने श्री जवाहरलाल नेहरू से अन्तरिम सरकार बनाने के लिए मंत्रिमण्डल की सूची मांगी। इसके लिए कांग्रेस कार्यसमिति की पार्लियामेन्ट्री सब-कमेटी की बैठक बुलाई गई। सरदार वल्लभभाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम और राजेन्द्र प्रसाद इसके तीन सदस्य थे। इस बैठक में अन्तरिम सरकार में आने वालों के नाम निश्चित करने थे। मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त, 1946 को अपनी नीति के प्रचार के लिए "डायरेक्ट एक्शन" के रूप में हड़ताल और सभा करने का निश्चय किया। कलकत्ता में भारी दंगा हो गया। हजारों आदमी मारे गए। लगभग तीन हजार लाशें सड़कों पर जहां-तहां से हटाई गईं। कलकत्ता की हालत बहुत खराब हो गई। दंगा शान्त करने गांधीजी वहां गए। इसके लिए उन्हें उपवास करना पड़ा।

वायसराय ने कांग्रेस से अन्तरिम सरकार बनाने को कहा—इसके लिए 27 अगस्त, 1946 को दिल्ली में कांग्रेस-कार्यसमिति की बैठक हुई। गांधीजी इस बैठक में सम्मिलित हुए। अन्तरिम सरकार में कौन-कौन रहेंगे, इसका निश्चय हुआ। गांधीजी का कहना था कि देश की ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता अन्तरिम सरकार में रहें। इसके अनुसार 2 सितम्बर, 1946 को अन्तरिम सरकार बनी। इसमें 12 मंत्री बनाए गए। जिनके नाम थे सर्वश्री जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना आजाद, शरतचन्द्र बोस, राजगोपालाचारी, आसफ अली, डाक्टर मथाई, जगजीवनराम, सर शफात अहमद खां, सरदार बलदेव सिंह और अली जहीर।

राजेन्द्र प्रसाद खाद्य एवं कृषि मंत्री बने। देश में अन्न की समस्या जटिल थी। देश में इतनी पैदावार नहीं थी, जिससे यहां के लोगों को भर पेट भोजन मिल सके। अन्न बाहर से मंगाना पड़ता था। राजेन्द्र प्रसाद नहीं चाहते थे कि विदेश से अन्न मंगाया जाए। खेती पर बहुत जोर डाला गया। पैदावार बढ़ाने की खूब चेष्टा की गई। सप्ताह में एक बार भोजन छोड़ने की अपील की गई। अन्न की बरबादी रोकने का आन्दोलन छेड़ा गया, अन्न की पूर्ति किसी कन्दमूल, फल और सब्जी से हो, इस पर बल दिया गया।

इतने गुणों के होते हुए भी उनमें एक त्रुटि थी। वह अधिकांश भारतीय सन्तों में पाई जाती है। "न" कहना उनके लिए कठिन था। लोग उनसे बराबर अपनी भलाई और स्वार्थ के लिए परिचय-पत्र मांगते और तुरंत पा भी जाते। किसी की बात मानना या किसी की बात रखना वे अपना धर्म समझते थे। मुझे एक बार की घटना याद है। संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में उनके साथ एक ऐसी घटना हुई, जिससे उन्हें लगा कि उनके आत्म-सम्मान पर आंच आई है। उन्होंने इस्तीफा दे दिया। गांधीजी को किसी से यह बात मालूम हुई। गांधीजी ने राजेन्द्र प्रसाद को बुलाया। राजेन्द्र प्रसाद ने गांधीजी को इस्तीफे का कारण बता दिया। गांधीजी उनकी बात से सहमत थे। पर, फिर भी उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद को सलाह दी कि वे इस्तीफा वापस ले लें। बोले, "तुम्हारी जगह कोई और होता, तो मैं उसे इस्तीफा वापस लेने के लिए नहीं कहता पर, यह ठीक नहीं है कि तुम जैसा व्यक्ति महज अपने आत्म-सम्मान के प्रश्न पर इस्तीफा दे। तुम्हारे जैसे व्यक्ति को मान-अपमान से ऊपर होना चाहिए।" राजेन्द्र प्रसाद "न" नहीं कर सके। इसी प्रकार 1947 में महज अपने साथियों की प्रसन्नता के लिए अपनी इच्छा न

होते हुए भी, उन्होंने कांग्रेस की अध्यक्षता स्वीकार कर ली और खाद्य मंत्री का पद त्याग दिया। उन्होंने कहा भी था कि "भारत की कठिन खाद्य समस्या को मैं समझ ही पाया था और इससे जूझने की तैयारी कर ही रहा था कि कांग्रेस की अध्यक्षता और संविधान सभा के सभापतित्व का भार संभालने के लिए मुझे खाद्य मंत्री का पद लाचारीवश छोड़ना पड़ा।"

हमें विश्वास है कि यदि राजेन्द्र प्रसाद एक वर्ष के लिए भी स्वातंत्रोत्तर भारत सरकार के मंत्री मण्डल में किसी विभाग में मंत्री होते तो, वहां भी वे एक मिसाल कायम कर देते और अपनी कार्यपटुता, सूझबूझ, शालीन व्यवहार और सहज सौजन्य के लिए चिरकाल तक याद रखे जाते। पर राजेन्द्र प्रसाद जैसे असाधारण व्यक्ति के लिए मंत्री पद तो साधारण-से-साधारण बात थी। वे उससे भी उच्च पद के लिए सर्वथा योग्य थे और नेहरू तथा पटेल जैसे नेताओं ने तुरंत महसूस कर लिया कि संविधान सभा के सभापतित्व के पद के लिए राजेन्द्र प्रसाद से अधिक उपयुक्त और कोई व्यक्ति नहीं है। बाद में उन्हें राष्ट्रपति चुनकर जो गौरव प्रदान किया गया, उससे स्वयं राष्ट्रपति पद की गरिमा बढ़ी, ऐसा कहना अतिश्योक्ति नहीं है।

13. संविधान सभा की अध्यक्षता

ब्रिटिश सरकार ने 16 मई, 1946 वाली अपनी घोषणा में संविधान सभा की रूपरेखा प्रस्तुत की। घोषणा के अनुसार भारत को तीन-चार हिस्सों में बांट कर ही संविधान सभा बननी थी। घोषणा में इसकी प्रक्रिया भी बता दी गई थी। उस प्रक्रिया के अनुसार एक स्थायी अध्यक्ष चुनना था। अन्य पदाधिकारियों का भी चुनाव करना था। अल्पसंख्यकों एवं जनजातियों के लिए एक मंत्रणा समिति कायम करनी थी। इसके बाद प्रान्तीय प्रतिनिधियों को तीन खण्डों में बांटने की व्यवस्था थी। प्रत्येक खण्ड के द्वारा अलग-अलग बैठ कर अपने लिए संविधान की रूपरेखा तैयार करने की बात थी। पहले खण्ड समूह में मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्य प्रदेश और उड़ीसा थे। दूसरे समूह में पंजाव, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त और सिन्ध थे। तीसरे समूह में थे बंगाल और आसाम।

पहले समूह में तो गैर-मुस्लिम बहुसंख्या में थे। अन्य दो समूहों में मुसलमानों की बहुतायत थी। मुस्लिम सम्प्रदायवादियों की मांग थी कि आसाम और बंगाल को मिलाकर पूर्वी पाकिस्तान बने। पंजाब, सिंध, उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त और कश्मीर को मिलाकर पश्चिमी पाकिस्तान कायम किया जाए। अतः इन समूहों की व्यवस्था का एक प्रकार से यही अर्थ था कि समूह एक और समूह तीन अपने लिए पाकिस्तानी संविधान तैयार कर सकेंगे।

आसाम में गैर-मुस्लिमों की बहु संख्या थी। पंजाब और बंगाल के पर्याप्त बड़े क्षेत्रों में गैर-मुस्लिम आबादी थी। इन क्षेत्रों के मन में यह आशंका हो गई कि इस व्यवस्था पर अमल करने से उनकी अनिच्छा होने पर भी वे लोग पाकिस्तान में आ जाएंगे। राष्ट्रीय नेताओं को इस बात का भय था कि यदि संविधान-सभा प्रान्त-समूहों में काम करने के लिए एक बार बंट गई तो फिर वह शायद ही एक साथ बैठने के लिए समवेत हो सकेगी। इसलिए उन्हें ये व्यवस्थाएं पसन्द नहीं थीं। किन्तु उन्होंने इन सब खामियों के होने पर भी ब्रिटिश मिशन की योजना इस विश्वास से स्वीकार कर ली थी कि उसमें जो भी बन्धन संविधान सभा की प्रभुता पर लगाए गए हों और उसकी प्रक्रिया के बारे में चाहे जो भी उपबन्ध किए गए हों, सभा उन सब से अपनी मुक्ति अपनी इच्छा मात्र से प्राप्त कर सकेगी। स्थायी अध्यक्ष चुने जाने पर उसे जनता की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था होने के नाते भारतीय जनता का पूरा बल और समर्थन प्राप्त हो सकेगा।

इतिहास में फ्रांस का ज्वलन्त उदाहरण विद्यमान था। 1798 में फ्रांस के राजा सोलहवें लुई ने फ्रांस के वर्ग-प्रधान समाज की प्रतिनिधि संस्था की सभा बुलाई। उस सभा की संवैधानिक शक्तियां प्रायः नगण्य थीं। किन्तु जब सभा एक बार समवेत हो गई तब उसने अपनी शक्तियों को परिसीमित करने

वाले सारे वैधानिक उपबन्धों को अमान्य कर दिया। उसने अपनी घोषणा द्वारा यह साफ कह दिया कि फ्रांस के लिए नया प्रजातांत्रिक संविधान बनाए बगैर सभा विघटित न होगी। वह सभा फ्रांस की राज्य-क्रांति की प्रेरणा और शक्ति का केन्द्र बन गई और उसने फ्रांस की कायापलट कर दी।

भारतीय नेताओं का भी यही विश्वास था कि इस संविधान सभा को भी भारतीय जन-क्रांति का प्रबल साधन बना लेंगे। संविधान सभा का अस्तित्व, उसकी शक्तियां और कार्य प्रणालियां भारतीय जनता के प्रतिनिधियों के पारस्परिक करार पर ही तो आश्रित थीं। अतः वह भी अपने संविधान और प्रक्रिया की स्रष्टा होने के नाते जब चाहे अपने संविधान और अपनी प्रक्रिया में अनुकूल परिवर्तन कर सकेगी।

इस संविधान सभा के निर्माण में कई बाधाएं उत्पन्न हुई थीं। संविधान सभा के गठन के पीछे कई विचार-धाराएं काम कर रही थीं। बहुत से लोगों का विचार था कि वह भारत में बालिग मतदान द्वारा चुनी गई प्रतिनिधि सभा बने और वही भारत का संविधान तैयार करे। किन्तु ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि मण्डल ने अपनी घोषणा में जिस संविधान सभा को कायम करने का निश्चय व्यक्त किया था वह वयस्क मताधिकार द्वारा चुनी जाने वाली नहीं थी। ब्रिटिश प्रतिनिधि मंडल द्वारा यह कहा गया कि जिन प्रान्तीय विधान-मण्डलों का निर्वाचन कुछ ही दिन पूर्व हुआ है वे ही प्रान्त की कुल जनसंख्या के हर दस लाख के पीछे एक प्रतिनिधि के हिसाब से इस संविधान सभा के लिए सदस्य निर्वाचित कर दें। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि प्रतिनिधियों के निर्वाचन में इन विधान सभाओं के मुसलमान सदस्य पृथक बैठकर मुसलमानों के प्रतिनिधि और अन्य सदस्य गैर-मुस्लिम जनता के प्रतिनिधि निर्वाचित करेंगे। केवल पंजाब के लिए यह विशेष व्यवस्था थी कि वहां के विधान मण्डल के सदस्य मिलजुल कर प्रतिनिधि चुनेंगे।

साम्प्रदायिकता के आधार पर की गई ब्रिटिश सरकार की यह घोषणा राजनीतिक छल प्रपंच से भरी हुई थी। फिर भी संविधान सभा का काम 9 दिसम्बर, 1946 को प्रारम्भ किया गया। देश के हर प्रदेश से जो प्रतिनिधि चुनकर आए, उससे संविधान-सभा गठित हुई। इसमें आधुनिक भारत के प्रकाण्ड विद्वान, दार्शनिक और तत्ववेत्ता, विधि प्रशासक, सूक्ष्मदर्शी विधिवेत्ता, दृढ़ प्रतिज्ञ राजनयिक एवं देशभक्त क्रान्तिकारी भी आए थे। भारत के अब तक के इतिहास में, संभवतः संसार के इतिहास में, इससे पूर्व कभी भी एक ही सभा में इतने मनीषी एवं विशिष्ट जन एकत्रित न हुए थे। भारतीय इतिहास के किसी युग में ऐसा मौका भी नहीं आया था जब इतनी जटिल समस्याओं और कठिन परिस्थितियों से अनुभवी देशवासियों को जूझना पड़ा हो। ऐसी स्थिति में सभा के सामने एक ज्वलन्त प्रश्न था, इस संविधान सभा के लिए ऐसा मार्गदर्शक कर्णधार चुनना जो तरंगों और प्रचण्ड लहरों के बीच गांधीजी सहित राष्ट्रीय नेताओं के संकल्प की रक्षा करते हुए राष्ट्र की नैया को राजी खुशी पार लगा दे। इसमें संदेह नहीं कि इस सभा में अनेक प्रकाण्ड विधिवेत्ता तथा सुलझे और तपे हुए राजनीतिज्ञ आए थे, किन्तु इन सब के बीच एक व्यक्ति ऐसा भी था जिसकी तरफ सभी सदस्यों की दृष्टि आकृष्ट हुई। वे थे राजेन्द्र प्रसाद। 11 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा के स्थायी सभापति पद पर राजेन्द्र प्रसाद का चुनाव सर्वसम्मति से हो गया। इसके साथ ही ब्रिटिश सरकार की 16 मई वाली घोषणा की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हो गई।

विषम परिस्थितियों, साम्प्रदायिक समस्याओं, मतभेदों और आपसी मनोमालिन्य के वातावरण के बीच संविधान सभा के काम को पूरा कराने की सामर्थ्य एवं प्रबुद्धता राजेन्द्र प्रसाद में क्या और कितनी थी, इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए गोपालस्वामी अय्यंगार ने उनके संविधान सभा के अध्यक्ष चुने जाने पर कहा, "डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का निर्वाचन उस असीम विश्वास का प्रतीक है जो इनमें विधान परिषद का ही क्या, समस्त देश का है। सभापति चुनकर वस्तुतः हम उनका उतना सम्मान नहीं कर रहे हैं, जितना वे हमारे आमंत्रण को स्वीकार कर हमारा कर रहे हैं। इसलिए वस्तुतः हमें अपना अभिनन्दन करना है कि उन्होंने विधान-परिषद के स्थायी सभापति का आसन स्वीकार किया।"

"डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद एक दुःस्साहसपूर्ण दायित्व स्वीकार कर रहे हैं। उनका जीवन देश सेवा के लिए आत्म समर्पण का जीवन रहा है। अनुपम त्याग और तपस्या से इनका जीवन पवित्र हो चुका है। मेरे लिए यह आवश्यक है कि मैं उनके महान पाण्डित्य, गम्भीर विद्वत्ता, तथा मनुष्य और स्थिति के अनुकूल विस्तृत ज्ञान पर प्रकाश डालूं। इन गुणों ने ही उन्हें इस महान कार्य के योग्य बनाया है। इसके निर्वाह में उन्हें जिन कठिनाइयों, जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ेगा, उसके समाधान के लिए उन्हें इन गुणों का सहारा लेना होगा। गत कई दिनों से ही मैं उनके सम्पर्क में आया हूं और उनसे मेरा साक्षात हुआ है। अब मुझे दुःख होता है कि पहले से तथा अधिक घनिष्ठतापूर्वक उन्हें जानने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला। मैं इनके संबंध में सुन तथा पढ़ चुका था। पर गत दिनों जब से साक्षात हुआ है और उन्हें जानने का अवसर मिला है, मैंने यह अनुभव किया है कि अपनी तीव्र बुद्धि और गम्भीर ज्ञान के कारण ही वे देशवासियों का आदर-सम्मान पाते हैं और पाते रहेंगे। इनकी सर्वोपरि विशेषताएं, जिनके कारण ये समस्त देशवासियों का बिना सम्प्रदाय और वर्ग-भेद के, स्नेह और सम्मान प्राप्त करते रहेंगे, वे हैं इनका स्वाभाविक सौजन्य, समस्या को समझने की इनकी पद्धति जो वाद-विवाद में आवेश की ओर प्रवाहित होने वाले व्यक्तियों को शान्त होने के लिए बाध्य कर देती है, और इनके मधुर वचन जो इनके उस दायित्व को सफल बनाने में बड़े सहायक होंगे जिसे इन्होंने स्वीकार किया है। इनके सभापति निर्वाचित हो जाने पर यह कहा जा सकता है कि संविधान सभा ने अपने भाग्य के निर्णायक जीवन का श्रीगणेश किया है।"

राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष हुए। इस चुनाव पर सभी प्रान्तों के प्रायः सभी वरिष्ठ सदस्यों एवं सभी दलों की ओर से प्रसन्नता और संतोष व्यक्त किया गया। इनके गुणों और योग्यता के संबंध में देश के सर्वोच्च नेताओं और प्रतिष्ठित पत्रों ने उनकी जो प्रशंसा तथा सराहना की वह अद्वितीय थी।

अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठते ही उन्होंने जो कुछ भी कहा, उससे संविधान सभा की महत्ता और गरिमा बढ़ी और देश को स्थायित्व का आश्वासन भी मिला। तब उन्होंने कहा था:— इस विधान परिषद का काम बहुत मुश्किल है। इसके सामने तरह-तरह के सवाल पेश होंगे। भारतीय विधान-परिषद का यह जलसा बड़े ही कठिन समय में हो रहा है। हम यह मानते हैं कि इस तरह की दिक्कतें और विधान-परिषदों के सामने, जहां-जहां वे हुई हैं, रही हैं, वहां भी आपस में मतभेद रहे हैं, और इन मतभेदों को जोरों के साथ विधान परिषद के सामने पेश भी किया गया है। हम यह भी जानते हैं कि बहुत-सी विधान परिषदें झगड़ा और खूंरेजी के बीच हुईं और उनकी बहुत-सी कार्यवाहियां भी

झगड़े और फसाद के बीच हुई। मगर बावजूद इन दिक्कतों के इन परिषदों ने अपना काम पूरा किया और उस जमाने में जो सदस्य हुआ करते थे, उन्होंने दूरदर्शिता, हिम्मत, सद्‌भावना, और वफादारी से एक दूसरे के विचारों को सामने रखते हुए आपस में मिलकर इस तरह के विधान तैयार किए हैं, जिन्हें उन देशों के सभी लोगों ने मंजूर किया है। आज बहुत दिनों के बीत जाने के बाद भी उन देशों के लोग इन विधानों को अपने लिए एक बड़ी कीमती चीज मानते हैं। कोई कारण नहीं कि हमारी यह विधान परिषद भी, बावजूद इन कठिनाइयों के जो हमारे सामने आई हैं, अपने काम को उसी खूबी के साथ, उसी सफलता के साथ अंजाम न दे। चाहिए इसमें सच्चाई, चाहिए इसमें एक दूसरे के ख्याल के लिए इज्जत और हुरमत। चाहिए हमको यह ताकत कि हम एक-दूसरे की बातों को सिर्फ समझ ही न सकें, बल्कि जहां तक हो कोई यह न समझे कि उसकी उपेक्षा की गई या उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया गया। अगर ऐसा हो, अगर हममें स्वयं ऐसी शक्ति आ जाए, तो मुझे इस बात का पूरा-पूरा विश्वास है कि बावजूद इन कठिनाइयों के और सब मुश्किलों के हम अपने काम में पूरी तरह से कामयाब होकर रहेंगे।

"मैं जानता हूं कि इस परिषद् की पैदाइश तरह-तरह के प्रतिबन्धों के साथ हुई है। बहुत से प्रतिबन्ध तो ऐसे हैं कि मुमकिन है उन्हें अपनी कार्यवाही के सिलसिले में हमें याद भी रखना पड़े। मगर साथ ही मैं यह भी जानता हूं कि इस संविधान सभा को पूरा अधिकार, मुकम्मिल अख्तियार इस बात का है कि वह अपनी कार्यवाही जिस तरीके से चाहे करे। इसके अन्दर वह जो कुछ करना चाहे करे। किसी भी बाहरी ताकत को अख्तियार नहीं है कि इसकी कार्यवाही में कुछ भी हस्तक्षेप या दख्लन्दाजी कर सके। इतना ही नहीं, मैं यह भी मानता हूं कि जो पाबन्दियां इसको जन्म के साथ मिली हैं, इनको तोड़ देने और उनको खत्म कर देने का अख्तियार भी इस असेम्बली को है। आपकी कोशिश यही होनी चाहिए कि हम इन बंधनों से बाहर निकल कर एक ऐसा विधान, एक ऐसा कायदा अपने देश के लिए तैयार करें, जिससे इस देश के हरेक स्त्री-पुरुष को यह मालूम हो जाए कि चाहे वह किसी भी मजहब का क्यों न हो, किसी भी प्रान्त का क्यों न हो, किसी भी विचार का क्यों न हो, उसके सभी अधिकार सदा सब तरह से सुरक्षित हैं। अगर हमारी असेम्बली में इस तरह का प्रयत्न किया गया और इसमें हमें सफलता मिली तो मैं भी मानता हूं कि संसार के इतिहास में यह एक इतना बड़ा काम होगा, जिसके मुकाबले की मिसालें कम ही मिल सकती हैं... मैं सबको दिल से धन्यवाद देता हूं और यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि आइन्दा की कार्यवाही में जो कुछ शक्ति ईश्वर ने मुझे दी है और जो कुछ थोड़ी बुद्धि मुझे मिली है और जो कुछ संसार का थोड़ा बहुत तजुर्बा मुझे हासिल हुआ है, वह सब आपकी सेवा में अर्पित रहेगा। मैं आशा करता हूं कि आप अपनी ओर से जो कुछ मदद हमें दे सकते हैं, देते रहेंगे।"

भारतीय संविधान सभा जो 9 दिसम्बर, 1946 को पहली बार बैठी, 24 जनवरी, 1950 को अपना काम पूरा करके ही उठी। इस बीच अध्यक्ष पद से राजेन्द्र प्रसाद ने 90 बार हस्तक्षेप करते हुए संवैधानिक विचार व्यक्त किये। संविधान सभा की कार्यवाही में उनके विचारों ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

राजेन्द्र प्रसाद ने वाद-विवाद के अवसर पर संविधान सभा में हस्तक्षेप करते हुए कई उलझनों और

विवादों से उसे मुक्त कराया। उदाहरण के तौर पर एक सदस्य ने प्रश्न किया कि संविधान सभा की नियमावली में सदस्यों की सुविधाओं को भी जोड़ा जाए। राजेन्द्र प्रसाद ने कहा— नहीं, इसके लिए अलग से प्रस्ताव लाया जाए। दूसरे सदस्यों ने प्रश्न किए कि संविधान सभा में एक ऐसी सलाहकार समिति बने जो ब्रिटिश सरकार के उस वक्तव्य के साथ समझौता करे, जिसने संविधान सभा को सीमित बन्धन में बांधा है। राजेन्द्र प्रसाद ने कहा— वह संविधान से अलग की बात होगी।

किसी सदस्य ने प्रश्न उठाया कि संविधान सभा के खर्च के बजट के लिए क्या नियम अपनाया जाएगा। अध्यक्ष का जवाब था कि संविधान सभा अपना बजट पास करने के लिए सक्षम है, यह अपना बजट स्वयं मंजूर करेगी। भारत सरकार से केवल उसकी पूर्ति करने को कहा जाएगा।

संविधान में जब भारत की नागरिकता का प्रश्न उठा, उस समय अध्यक्ष ने साफ कह दिया कि ऐसा कोई अनुच्छेद नहीं हो जो दूसरे देशों की नकल पर आधारित हो और बाद में विवाद का कारण बने। नागरिकता के सम्बन्ध में इस सभा के प्रमुख वकीलों की एक कमेटी बना दी जाए और सब तरह से इस बात को समझ कर कानूनी दृष्टिकोण से इसका फैसला किया जाए।

अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने 2 मई, 1947 को संविधान सभा में विचार व्यक्त करते हुए कहा कि संविधान सभा अंग्रेजी में संविधान तैयार कर रही है, किन्तु आवश्यक है कि उसका हिन्दी अनुवाद होता जाए। इस विचार का किसी ने विरोध नहीं किया। उनका स्पष्ट अनुमान ही नहीं, मत था कि इस देश में विदेशी भाषा चिरकाल तक नहीं चल सकती और न ही चलनी चाहिए। अन्ततः जन भाषाओं में प्रमुख हिन्दी ही इसका स्थान लेगी।

भारत के बंटवारे में जिन प्रान्तों को पाकिस्तान में मिलाया गया उनके सदस्यों की जगह खाली होने पर उनकी जगह पर नये सदस्य चुने गए। उनको शपथ ग्रहण कराकर असेम्बली में बैठने की इजाजत अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने दे दी। नये सदस्यों को लेने की व्यवस्था को नियमित करने के लिए श्री प्रकाश ने एक प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव पर राजेन्द्र प्रसाद ने सदस्यों की राय जाननी चाही। प्रस्ताव पर सदस्यों का नकारात्मक उत्तर मिला। इस पर अध्यक्ष ने कहा कि ऐसे प्रस्ताव को तो पहले छानबीन कमेटी में जाना चाहिए था, तब यहां उपस्थित करना ठीक रहता। जवाहरलाल नेहरू ने भी सदस्यों की खाली जगह पर नये सदस्यों को लेने की प्रक्रिया को नियमित करने का समर्थन किया, किन्तु अध्यक्ष ने दृढ़ता के साथ इसे अस्वीकार करते हुए कहा कि जिन सदस्यों को यहां बैठने की इजाजत दे दी गई है उस पर अब विचार करने का सवाल नहीं उठता।

22 जुलाई, 1947 को संविधान सभा में राष्ट्रीय झण्डे को प्रस्तुत करते हुए इसे स्वीकार करने का प्रस्ताव आया। अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने सदस्यों से कहा, "राष्ट्रीय झण्डे के सम्मान में सभी सदस्यों को खड़े होकर इसे स्वीकार करना है।" इसी बीच किसी सदस्य ने इस पर एक संशोधन रखने की इच्छा जाहिर की। इस पर अध्यक्ष ने कहा— अध्यक्ष के निर्णय के बाद किसी प्रकार का संशोधन नहीं लाया जा सकता।

23 जुलाई, 1947 को राज्यपाल के आपात स्थिति में अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेद पर बहस चल रही थी। श्री के० एम० मुंशी का संशोधन था कि आपात स्थिति में निश्चित अधिकार राज्यपाल के हाथ में जाएं। पंडित गोविन्द बल्लभ पंत ने इस संशोधन के पक्ष में बोलते हुए कहा कि हमें अपने दल का निर्णय मानना है और श्री मुंशी के संशोधन का समर्थन करना है। इस पर अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने हस्तक्षेप करते हुए कहा— "क्या मैं यह बता सकता हूं कि इस सभा का किसी दल के निर्णयों से कोई सम्बन्ध नहीं है?"

संविधान सभा में श्री एच० वी० कामथ के द्वारा यह निवेदन किया गया कि सर्वसत्ता-सम्पन्न विधान परिषद के सभापति के रूप में आपकी मान-प्रतिष्ठा के ख्याल से यह आवश्यक है कि कम-से-कम जहां तक इस सभा में 15 अगस्त, 1947 के सत्ता-हस्तान्तरण समारोह के कार्यक्रम का सम्बन्ध है, वह अधिकारियों के किसी प्रकार के हस्तक्षेप के बिना आपके द्वारा निश्चित किया जाना चाहिए। मुझे विश्वास है कि इस विषय में आपका आश्वासन पाने से यह सभा आपकी बहुत कृतज्ञ होगी।

अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने कहा— "सभा को मैं सूचित करना चाहता हूं कि कार्यक्रम के सम्बन्ध में मेरा विचार आज की बैठक समाप्त होने के समय एक वक्तव्य देने का है। किन्हीं बाहरी अधिकारियों का हुक्म चलने का कोई प्रश्न नहीं है। हम अपना कार्यक्रम स्वयं निश्चित करेंगे। 15 अगस्त के प्रबन्ध के सम्बन्ध में मेरे दिमाग में कुछ बातें हैं, जिन पर मैंने पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा कुछ अन्य मित्रों के साथ विचार किया है।"

"श्री एच०वी० कामथ के प्रश्न के उत्तर में मैं बैठक स्थगित होने से पूर्व 14 और 15 अगस्त के कार्यक्रम की घोषणा करूंगा। उसके अनुसार मैं आपसे एक बात और कहना चाहता था। 14 की रात और 15 अगस्त की सुबह के लिए हमने अगले अधिवेशन की घोषणा की है। यथासमय कार्यालय से सूचनाएं भेजी जाएंगी। संभव है कि सदस्यों को ठीक समय से ये सूचनाएं प्राप्त न हों। अतएव ये इसे ही सूचना समझ सकते हैं और समाचार पत्रों में जो प्रकाशित हो उसे भी वे इस सम्बन्ध में अपने लिए सूचना ही समझें। उन्हें नियमित रूप से सूचनाएं मिलने की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।"

भारतीय विधान-परिषद का सत्ता हस्तान्तरण अधिवेशन संविधान सभा भवन में नई दिल्ली में रात के 11 बजे, अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में प्रारम्भ हुआ। अध्यक्ष ने घोषित किया कि आज के कार्यक्रम का पहला विषय "वन्दे मातरम्" का गान है। हम सब इसे सुनेंगे। श्रीमती सुचेता कृपालानी ने "वन्दे मातरम्" गान का प्रथम पद गाया।

इस अवसर पर अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने कहा— "हमारे इतिहास के इस अहम मौके पर, जब वर्षों के संघर्ष और जद्दोजहद के बाद हम अपने देश के शासन की बागडोर अपने हाथों में लेने जा रहे हैं, हमें उस परम पिता परमात्मा को याद करना चाहिए, जो मनुष्यों को बनाता है और उन अनेकानेक, ज्ञात और अज्ञात, जाने-अनजाने पुरुषों और स्त्रियों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, जिन्होंने इस दिन की प्राप्ति के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए, जो हंसते-हंसते फांसी की तख्तियों पर चढ़ गए, गोलियों के शिकार बन गए, जिन्होंने कैदखाने और कालापानी के टापू में घुल-घुल कर अपने जीवन को

उत्सर्ग किया। जिन्होंने बिना संकोच माता-पिता, स्त्री-सन्तान, भाई-बहन, यहां तक कि देश को भी छोड़ दिया और धन-जन सबका बलिदान कर दिया। आज उनकी तपस्या और त्याग का ही फल है कि हम इस दिन को देख रहे हैं।"

उन्होंने आगे कहा—"हम अपनी श्रद्धा और भक्ति का उपहार महात्मा गांधी को भी भेंट करें। तीस वर्षों से वे हमारे पथ-प्रदर्शक और आशा और उत्साह की ज्योति बने रहे हैं। हमारी संस्कृति और जीवन के उस मर्म का वे प्रतीक हैं, जिसने हमको इतिहास की आफतों और मुसीबतों में भी जिन्दा रखा। निराशा और मुसीबत के इस कुएं से हमको उन्होंने खींच निकाला और हमारे दिलों में ऐसी जिन्दगी फूंकी जिसने अपने जन्मसिद्ध अधिकार (स्वराज्य) के लिए दावा पेश करने की हिम्मत और ताकत दी। उन्होंने हमारे हाथों में सत्य और अहिंसा का अचूक शस्त्र दिया, जिसके जरिए बिना हथियार उठाए स्वराज्य का अनमोल रत्न, इतने कम दाम में, इतने बड़े देश के लिए और यहां के करोड़ों आदमियों के लिए हमने हासिल किया। हमारे जैसे कमजोर लोगों को भी उन्होंने बड़ी चतुराई और अचल संकल्प के साथ सत्य-अहिंसा रूपी अस्त्र धारण करवा कर और ईश्वर के प्रति अटल विश्वास की भावना जगा कर आगे बढ़ाया। हमारा कर्तव्य है कि हम सच्चे और अटल बने रहें। मैं आशा करता हूं कि अपनी विजय की घड़ी में हिन्दुस्तान उस अस्त्र को नहीं छोड़ेगा और उसके मूल्य को नहीं गिराएगा, जिसने उसे निराशा के गर्त से निकालकर ऊपर उठाया और जिसने अपनी शक्ति और उपयोगिता को भी प्रमाणित कर दिखाया। विश्व के भविष्य निर्माण के ऐसे समय में जब दुनिया के लोग लड़ाई से ऊब गए हैं और घबराने लगे हैं, इस अस्त्र को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। लेकिन हिन्दुस्तान इस भूमिका को हथियारों की होड़ करने वाले देशों की नकल करके नहीं निभा सकता। आज इस देश को मौका मिला है और हम आशा करते हैं कि इसमें (देश में) इतनी हिम्मत और शक्ति होगी कि वह संसार के सामने लड़ाई, मृत्यु और बरबादी से बचाने का अपना शस्त्र पेश कर सकेगा। संसार को इसकी जरूरत है। मगर लड़खड़ाता हुआ विश्व बर्बरता के युग से उबर कर शान्ति का साम्राज्य स्थापित करना चाहे, तो हमारा देश इस बात का स्वागत करेगा।

"दुनिया के सभी देशों को हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हम अपने इतिहास के अनुसार सबके साथ दोस्ती, मित्रता का बर्ताव रखना चाहते हैं। किसी से हमारा कोई द्वेष नहीं है। हमें किसी के साथ विश्वासघात नहीं करना है और हम उम्मीद करते हैं कि हमारे साथ कोई ऐसा नहीं करेगा। हमारी एक ही आशा और अभिलाषा है, वह यह है कि सब के लिए स्वतंत्रता प्राप्त कराने और मानव जाति में शांति और सुख स्थापित करने में मददगार हो सकें। जिस देश को ईश्वर और प्रकृति ने एक बनाया है, उसके आज दो टुकड़े हो गए हैं। नजदीक के लोगों से बिछुड़ना तो दुखदायी होता ही है। इसलिए मुझे यह कहना पड़ता था कि इस बंटवारे से हमारे दिल को दुख है, मगर इसके बावजूद हम अपनी तरफ से पाकिस्तान के लोगों को उनकी तरक्की एवं कामयाबी के लिए अपनी सद्भावना और शुभकामनाएं प्रकट करना चाहते हैं। जिस शासन के काम में आज वे लोग लग रहे हैं, उसमें हम उनकी पूरी कामयाबी चाहते हैं । ऐसे लोगों को जो बंटवारे से दुखी हैं और पाकिस्तान में रह गए हैं, हम अपनी शुभकांमनाएं भेजते हैं। उनको घबराना नहीं चाहिए। अपने घर-बार, धर्म और संस्कृति को बनाए रखना चाहिए। हिम्मत और सहिष्णुता से काम लेना चाहिए। उन्हें ऐसा भय करने का कोई कारण नहीं कि उनके साथ ठीक और न्यायपूर्ण बर्ताव नहीं होगा और उनकी रक्षा नहीं होगी। जो आश्वासन

दिया है उसको मान लेना चाहिए। और जहां पर वे आज रह रहे हैं, वहां अपनी वफादारी और सच्चाई से अपनी मुनासिब जगह उन्हें हासिल होनी चाहिए। हिन्दुस्तान में जो अल्पसंख्यक लोग हैं, उनको हम आश्वासन देना चाहते हैं कि उनके साथ ठीक और इंसाफ का बर्ताव होगा और उनके और दूसरों के बीच कोई फर्क नहीं किया जाएगा। उनका धर्म, संस्कृति और उनकी भाषा सुरक्षित रहेगी और नागरिकता के सभी अख्तियार और अधिकार उनको मिलेंगे। उनसे आशा की जाएगी कि जिस देश में वे रहते हैं, उसकी तरफ और उस देश के विधान की तरफ वे वफादार बने रहेंगे। सभी लोगों को हम यह आश्वासन देना चाहते हैं कि हमारी अथक कोशिश होगी कि देश से गरीबी और दीनता, भूख और बीमारी दूर हो जाए। मनुष्य-मनुष्य के बीच से भेद-भाव उठ जाए। कोई मनुष्य दूसरे का शोषण न करे। सबके लिए सुन्दर समुचित जीवन बिताने के साधन जुटा दिए जाएं। हम एक बड़े काम में लगने जा रहे हैं। हम आशा करते हैं कि देश के सभी लोग हमारे इस काम में मदद और सहयोग देंगे और संसार के दूसरे देश अपनी सहानुभूति और सहायता देंगे। हम आशा करते हैं कि हम अपने को इस योग्य साबित कर सकेंगे।

"इसके बाद अब मेरा प्रस्ताव है कि हम सब उन वीरों की पुण्य स्मृति में, जिन्होंने देश में और बाहर स्वतंत्रता संग्राम में अपनी बलि दी, कुछ क्षण मौन रहें।"

इसके उपरान्त अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने सदस्यों के लिए एक प्रतिज्ञा के लिए प्रस्ताव पास कराया और कहा—"अभी हमने यह निश्चय किया है कि 12 बजते ही हम प्रतिज्ञा ग्रहण करेंगे। पहले मैं अपनी भाषा में इसका एक-एक वाक्य पढ़ता जाऊंगा और आशा है कि सदस्य जो इस भाषा को जानते हैं, उसको दुहराते जाएंगे। उसके बाद अंग्रेजी में एक-एक वाक्य पढ़ता जाऊंगा और आशा करूंगा कि सदस्य उसे दुहराते जाएंगे। प्रतिज्ञा ग्रहण करने के समय सदस्य कृपया खड़े हो जाएंगे। पर दर्शक बैठे रहेंगे। 12 बजने में ठीक आधा मिनट बाकी है। बस घड़ी के 12 बजे (रात्रि) की घंटी देने की मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

घड़ी के 12 (मध्य रात्रि) बजाते ही अध्यक्ष तथा सदस्यगण खड़े हो गए और प्रतिज्ञा ग्रहण की। अध्यक्ष ने प्रतिज्ञा का एक-एक वाक्य पहले हिन्दुस्तानी में और फिर अंग्रेजी में पढ़ा और सदस्यों ने उसे दुहराया।

प्रतिज्ञा इस प्रकार है:—

"अब जब कि हिन्दवासियों ने त्याग (कुर्बानी) और तप से स्वतंत्रता (आजादी) हासिल कर ली है, मैं,........... जो इस विधान परिषद (आइने साज मजलिस) का एक सदस्य/मेम्बर हूं, अपने को बड़ी नम्रता (निहायत इनकिसारी) से हिन्द और हिन्दवासियों की सेवा (खिदमत) के लिए अर्पण (वक्फ) करता हूं, ताकि यह प्राचीन (कदीम) देश (मुल्क) संसार में अपनी उचित और गौरवपूर्ण (बाइज्जत) जगह पा लेवे और संसार में शांति स्थापना (अमन कायम) करने और मानव जाति (इंसान) के कल्याण (बहबूदी) में अपनी पूरी शक्ति लगाकर खुशी-खुशी हाथ बंटा सके।

संविधान सभा द्वारा सत्ता ग्रहण तथा लार्ड माउण्टबैटन के गर्वनर-जनरल नियुक्त किए जाने की वाइसराय को सूचनाः

अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने प्रस्ताव रखते हुए कहा कि:—
वाइसराय को इस बात की सूचना दी जानी चाहिए कि:
(1) भारतीय संविधान सभा ने भारत का शासनाधिकार ग्रहण कर लिया है;
(2) भारतीय संविधान सभा ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया है कि 15 अगस्त, 1947 से लार्ड माउण्टबैटन भारत के गर्वनर जनरल हों; और
(3) यह संदेश अध्यक्ष तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा लार्ड माउंटबैटन को पहुंचाया जाए।
(हर्ष ध्वनि)

मैं मान लेता हूं कि सभा इसे स्वीकार करती है। इसके उपरान्त अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने कहा: अब भारतीय महिला समाज की ओर से श्रीमती हंसा मेहता राष्ट्रीय पताका भेंट करेंगी। (हर्ष ध्वनि)

श्रीमती हंसा मेहता ने कहा— आदरणीय अध्यक्ष महोदय! श्रीमती सरोजिनी नायडू की अनुपस्थिति में मेरा यह परम सौभाग्य है और (इसका) मुझे अभिमान है कि भारतीय महिलाओं की ओर से राष्ट्र को आपके द्वारा यह पताका भेंट करती हूं।

यह वही पताका थी जो ब्रिटिश सरकार की पताका को उतार कर उसकी जगह राष्ट्रीय पताका के रूप में चढ़ाई गई। यह सब संवैधानिक और रस्मी तौर पर हुआ। भारतीय महिलाओं के प्रतिनिधि स्वरूप 74 महिलाएं राष्ट्रीय पताका के साथ अध्यक्ष के सामने उपस्थित थीं।

15 अगस्त के बाद की घटनाओं को दुहराना हमारा उद्देश्य नहीं है। संविधान सभा चलती रही। संविधान की धारा-पर-धारा बनती रही, देश में नाना प्रकार की घटनाएं घटित होती रहीं। सबसे बड़ी घटना थी पाकिस्तान का कश्मीर पर विश्वासघातपूर्ण आक्रमण, और दूसरी हृदयद्रावक घटना थी महात्माजी की — अहिंसा के पुजारी की — हिंसा के हाथों हत्या। इन दोनों ने भारत के जन मानस को हिला कर रख दिया, परन्तु साथ ही देश के नेताओं और जनता को कर्तव्य के कण्टकाकीर्ण मार्ग पर दृढ़ कदमों से आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

संविधान के कुछ रोचक और प्रेरक प्रसंगों की चर्चा करना जरूरी है। 5 अगस्त, 1949 की बात है। संविधान सभा में 'कर' संबंधी अनुच्छेद पर बहस चल रही थी। उसमें 'नमक पर संघ कोई कर न लगाएगा' शब्द आए थे। महावीर त्यागी का इस पर संशोधन था कि इसको संविधान सभा में न रखा जाए। नमक पर कर लगे या न लगे यह संसद का काम है। अगर संविधान सभा में इस खण्ड को स्थान दिया गया तो भावी पीढ़ियों का हाथ सदा के लिए बंध जाएगा। अगर हम उस खण्ड को संविधान में रखते हैं तो फिर शताब्दियों तक नमक पर कर न लगाया जा सकेगा। यह एक ऐसी बात है जिससे हमें बचना चाहिए। यही कारण है जो मैं अपने संशोधन को स्वीकार करने की सभा से सिफारिश करता हूं।

इस संशोधन को डा० आम्बेडकर भी स्वीकार कराना चाहते थे। पर अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने बीच में हस्तक्षेप करते हुए कड़े शब्दों में कहा—संशोधन पर मत लेने से पूर्व कुछ शब्द मैं श्री त्यागी के संशोधन के बारे में कहना चाहता हूं। इस संशोधन के संबंध में मसौदा समिति का जो रुख है उससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। देश की गरीब जनता को तो कितने कर देने पड़ते थे। पर जब महात्माजी ने सत्याग्रह का आन्दोलन शुरू किया तो उन्होंने आन्दोलन के लिए नमक कर सम्बन्धी प्रश्न को ही लिया। उनका ऐसा करना अकारण नहीं था। उन्होंने नमक कर इसलिए लिया था कि वे यह महसूस करते थे कि गरीब-से-गरीब भिखारी को भी, जिसे कि एक ही वक्त खाने को मिल पाता है, नमक कर का अपना अंश चुकाना पड़ता है। और यही कारण था कि जब उन्होंने नमक कर के विरुद्ध सत्याग्रह की अपील की थी तो प्रायः सारे देश को उनकी अपील जंच गई। उस समय कुछ ऐसे लोग भी थे जो यह महसूस करते थे कि उनका सत्याग्रह सफल नहीं होगा क्योंकि आन्दोलन के लिए उन्होंने ऐसे कर को चुना है जिसमें नाम मात्र की रकम लोगों को देनी पड़ती है। पर उनके आन्दोलन का नतीजा क्या हुआ इसे हम सभी जानते हैं। तीन सप्ताह के अन्दर ही देश के इस छोर से उस छोर तक सर्वत्र वह आन्दोलन चल पड़ा और शायद ही ऐसा ग्राम या स्थान रहा हो जहां नमक कानून की अवज्ञा न की गई हो।

मैं कहता हूं कि आज भी अगर आप नमक पर कर लगाते हैं तो उसी तरह के आन्दोलन का आपको सामना करना पड़ेगा जिसने कि सारे देश को हिलाकर रख दिया था। इसलिए मैं इस सभा को सुझाव दूंगा कि वह इस बात पर विचार करे कि अपने स्वातंत्र्य संग्राम के स्मारक के रूप में इस खण्ड को हमें संविधान में स्थान देना चाहिए अथवा नहीं। मैं सभा को यह राय दूंगा, और खूब सोचकर, विचार कर यह राय दे रहा हूं कि उसे श्री त्यागी के संशोधन को अस्वीकार करना चाहिए। पर सदस्यों को हक है वे जैसा चाहें इसका फैसला करें।

कितना जागरूक और कितना दृढ़ था हमारी संविधान सभा का अध्यक्ष!

एक अन्य प्रसंग में संविधान सभा में एक सदस्य ने अपने भाषण में 'चुपके से' शब्द का प्रयोग किया। इससे महावीर त्यागी को नाराजगी हुई। उन्होंने अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद से इसकी शिकायत की कि यह संसदीय पद्धति के प्रतिकूल शब्द है, इसे वापस कराया जाए। इस पर राजेन्द्र प्रसाद ने कहा— मैं यह मंजूर करता हूं कि संसदीय पद्धति से मैं इतना परिचित नहीं हूं कि यह कह सकूं कि 'चुपके से' शब्दों का प्रयोग यहां उचित है या नहीं। माननीय सदस्यों से मैं यह कहूंगा कि वे यहां कोई ऐसी शब्दावली प्रयुक्त न करें जिससे सदस्यों को दुख पहुंचे।

विधान-मण्डल, संसद, राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति की आयु निर्धारित करने सम्बन्धी प्रारूप पर डा० आम्बेडकर बोल रहे थे। संविधान के इस प्रारूप को अन्तिम रूप दिया जा रहा था। इसी बीच अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा—इस पर कुछ कहने की मेरी इच्छा है। किन्तु सदस्यों के मत को प्रभावित करने के ख्याल से नहीं। इस देश में हम उस व्यक्ति में, जो विधान मण्डल द्वारा पारित कानून का अर्थ निकालने के लिए न्यायाधीश नियुक्त हो, बहुत अधिक योग्यता अपेक्षित करते हैं। यह भी जानते हैं कि उन लोगों से भी, जो कानून का अर्थ निकालने में न्यायाधीशों
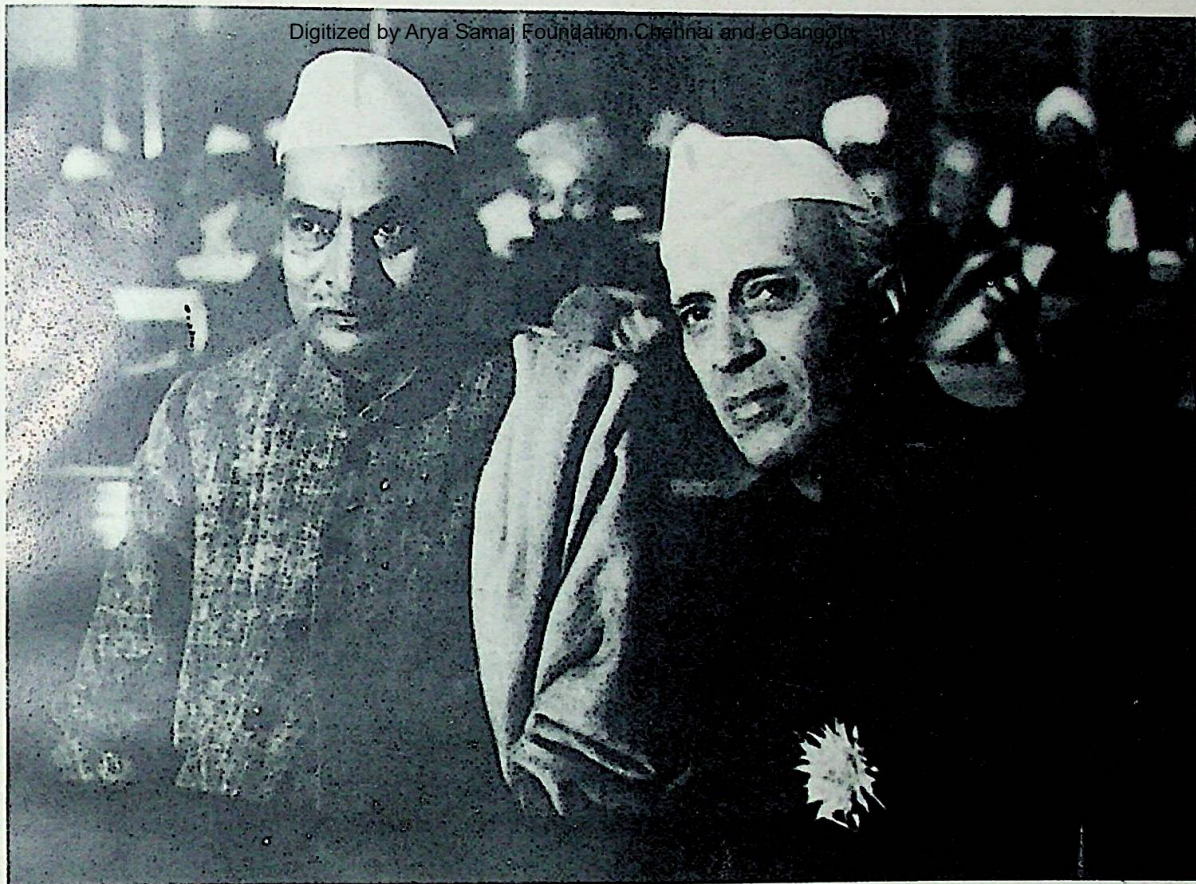
राजेन्द्र बाबू और पंडित नेहरू (संविधान सभा में पहला दिन)
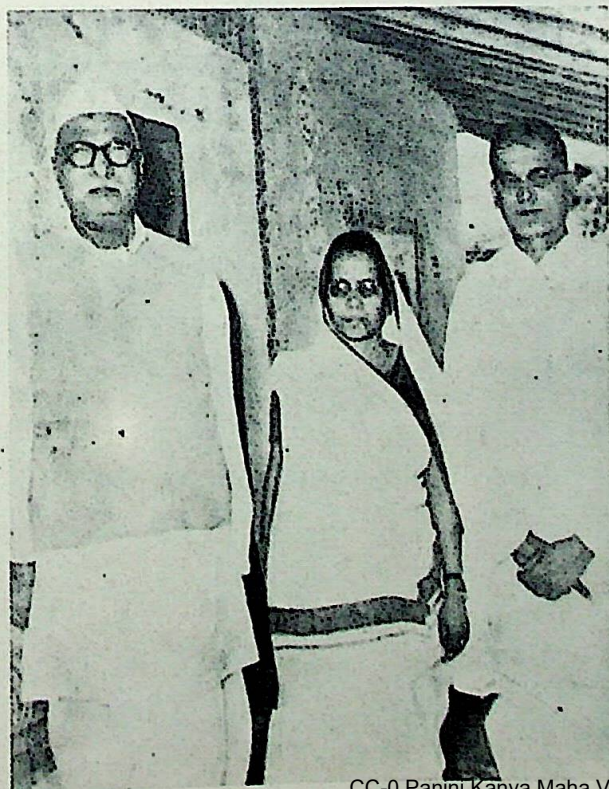
राजेन्द्र बाबू के साथ जयप्रकाश नारायण
और उनकी पत्नी प्रभावती
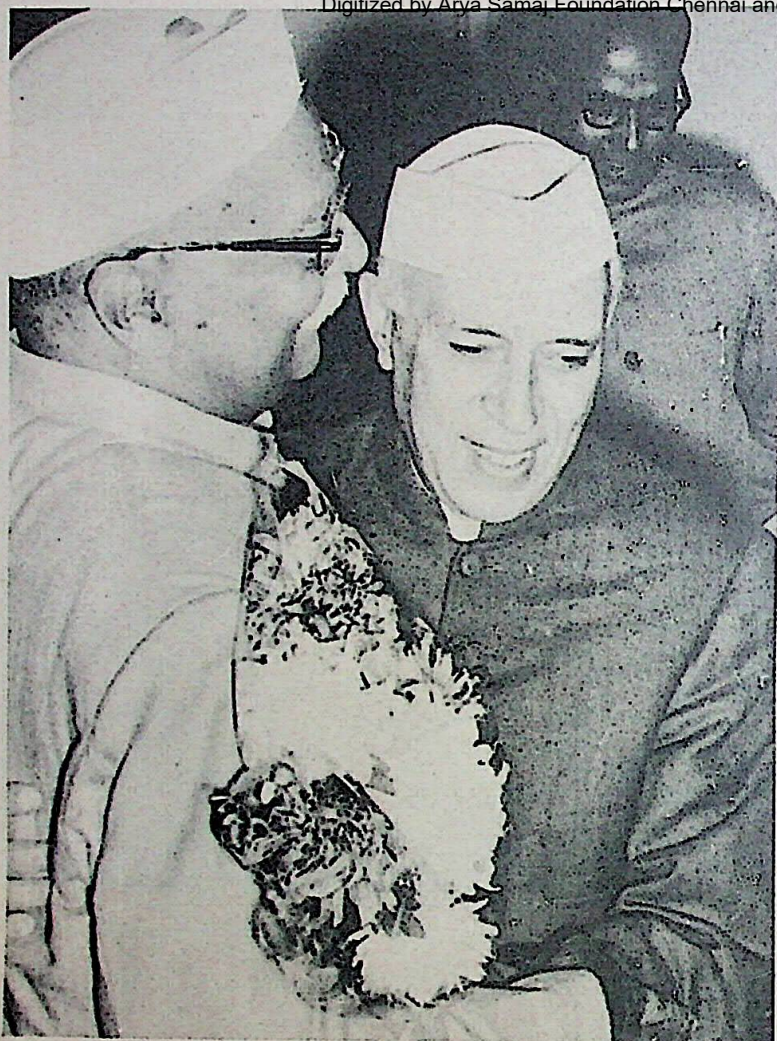
राष्ट्रपति के जन्म दिन पर प्रधानमंत्री नेहरू द्वारा अभिनन्दन-आलिंगन

कविवर रामधारीसिंह 'दिनकर' राष्ट्रपति को पुस्तक समर्पित करते हुए
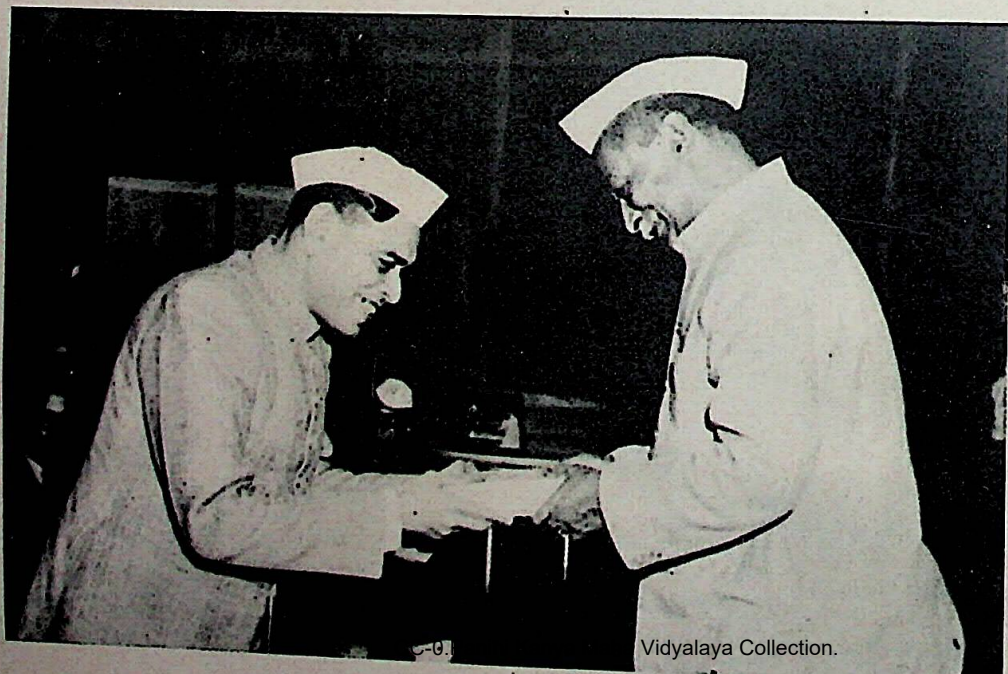
वरिष्ठ सांसदों, साहित्य सेवियों और समाज सेवियों के बीच

हैदराबाद के निज़ाम राष्ट्रपति का स्वागत करते हुए
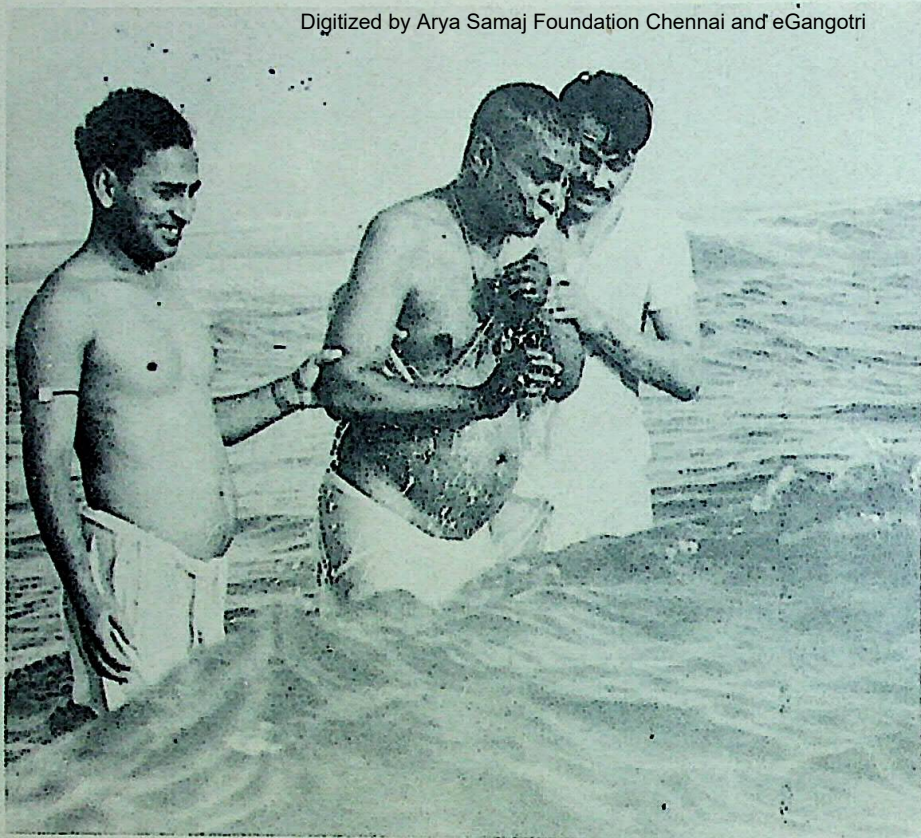
रामेश्वरम के निकट
धनुषकोटि में सागर-स्नान
करते राजेन्द्र बाबू

दिल्ली के लाल किले में
राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद
का नागरिक अभिनंदन ।
साथ में खड़े हैं प्रधानमंत्री
जवाहरलाल नेहरू
और गृह मंत्री पंडित
गोविन्द बल्लभ पंत
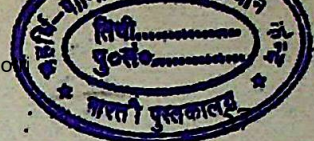
की सहायता करें, अति उच्च योग्यता की आशा की जाती है। किन्तु ऐसा दिखाई देता है कि सदस्यगण का यह मत है कि जिस व्यक्ति को कानून बनाना है उसे किसी योग्यता की अपेक्षा नहीं है। यदि हम उग्रतम स्थिति पर विचार करें तो हो सकता है कि नितान्त योग्यताहीन व्यक्तियों की संविधान सभा ऐसी बातें पारित कर सकती है जो सर्वथा बुद्धि-विहीन हों। उसके द्वारा बनाए गए कानून का अर्थ निकालने के लिए सारे कानूनवेत्ताओं और न्यायाधीशों का विवेक अपेक्षित होगा। यह एक विडंबना है किन्तु ऐसा दिखाई देता है कि इस युग में हमें इसी प्रकार की विसंगति को सहन करना होगा। मुझे तो कम से कम इस पर संतोष करना ही होगा, यद्यपि मैं इसे पसंद नहीं करता।

इन बातों को बीते कोई अधिक समय नहीं हुआ। धीरे धीरे अब उनकी उस समय कही हुई बातें उजागर होने लगी हैं। विधान सभाओं में जो और जैसी भीड़ जमा हो रही है, उसे देखते हुए 'विडम्बना और विसंगति' जैसे शब्दों का कितना सटीक प्रयोग राजेन्द्र प्रसाद ने किया, यह उनकी दूरदर्शिता को तो प्रकट करता ही है, स्थिति के सूक्ष्म अध्ययन को भी दर्शाता है।

एक दूसरे मौके पर संविधान के प्रारूप पर बहस चल रही थी। सेठ गोविन्द दास ने अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद को याद दिलाया कि उन्होंने कहा था कि "मैं व्यक्तिगत रूप में यह चाहता हूं कि संविधान मौलिक रूप में हमारी मुख्य भाषा में हो, अंग्रेजी में नहीं, जिससे हमारे भावी न्यायाधीश अपनी भाषा पर निर्भर हो सकें।"

इसके उत्तर में राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—"मैं तो अपने मत पर अब भी दृढ़ हूं। मुझे पता नहीं कि इस सभा के समस्त सदस्य मुझसे सहमत हैं या नहीं। किन्तु मैं अब भी अपने मत पर दृढ़ हूं कि यदि हम अपने संविधान को मौलिक रूप में ही अपनी ही भाषा में पारित करें तो यह हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और सम्मान के अनुकूल होगा। (करतल ध्वनि) किन्तु मैं देखता हूं यह कठिनाई इन सब मसलों में हमारे समक्ष रही है और मैं केवल आशा कर सकता हूं कि अब जो समिति नियुक्त की गई है वह हमें एक संतोषजनक अनुवाद ठीक समय पर दे सकेगी, जिससे उसे इस सभा में पेश करके पास करवाया जा सके। आज मैं यह बात नहीं कह सकता किन्तु ज्यों ही मुझे वह अनुवाद प्राप्त होगा मैं उस मामले को सभा के समक्ष रखूंगा।"

26 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा ने अंग्रेजी में संविधान को पारित किया। इस पर अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—अब मुझे इस विधेयक पर औपचारिक रूप में हस्ताक्षर करने हैं। प्रामाणिकता प्राप्त करने पर यह एक अधिनियम बनकर प्राधिकार मिलने पर शीघ्र प्रवृत्त हो सकेगा। इसके पश्चात् अध्यक्ष ने संविधान को अपने हस्ताक्षर के साथ प्रमाणित किया। किन्तु साथ ही अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने सभा से यह आज्ञा मांगी कि जनवरी में इस सभा की एक और बैठक निमंत्रित करने का मुझे प्राधिकार दिया जाए। यह प्रस्ताव के रूप में संविधान सभा के समक्ष लाया गया और स्वीकार कर लिया गया।

उपरोक्त प्राधिकार के अनुसार अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने 24 जनवरी, 1950 को संविधान सभा की एक बैठक बुलाई। इसमें कई महत्वपूर्ण काम हुए। एक तो अब तक राष्ट्र गान को संविधान में स्थान नहीं

दिया गया था। इस संबंध में कई विचार आए थे। अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने इस दिन अपने वक्तव्य द्वारा इसका निर्णय कर दिया। निर्णय देते हुए कहा- "इस सभा ने अभी एक प्रश्न पर विचार नहीं किया है। वह प्रश्न राष्ट्र गान के संबंध में है। प्रस्ताव स्वीकार करके रस्मी तौर से निर्णय देते हुए मैं ही एक वक्तव्य दे दूं।

"जिस गान के शब्द तथा स्वर 'जन-गण-मन' के नाम से विख्यात हैं वह भारत का राष्ट्र गान है किन्तु इसके शब्दों में सरकार की आज्ञा से यथोचित अवसर पर हेर-फेर किया जा सकता है। 'वन्दे मातरम्' गान का, जिसका भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम में ऐतिहासिक महत्व रहा है 'जन-गण-मन' के समान ही सम्मान किया जाएगा। उसका पद उसके समान ही होगा। (हर्ष ध्वनि) मुझे आशा है कि इससे सदस्यों को सन्तोष हो जाएगा।" दूसरा काम संविधान के हिन्दी संस्करण पर मंजूरी और हस्ताक्षर प्राप्त करना हुआ। इसके लिए अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—"अब केवल दो कार्य शेष रह गए हैं। उनमें से एक संविधान के हिन्दी रूपान्तर को प्रमाणित करना है। माननीय सदस्यों को स्मरण होगा कि इस सभा के एक प्रस्ताव द्वारा मुझे यह अधिकार मिला था कि मैं संविधान का अनुवाद हिन्दी में कराऊं और 26 जनवरी के पूर्व छपा कर प्रकाशित करा दूं। यह कार्य पूरा हो गया है। सभा ने अन्य भाषाओं में भी अनुच्छेद तैयार कराने, उन्हें छपाने तथा प्रकाशित कराने का अधिकार मुझे दिया था। वह कार्य आरम्भ तो कर दिया गया है किन्तु अभी पूरा नहीं हुआ है।"

मैं श्री घनश्याम सिंह गुप्त से निवेदन करता हूं कि वे हिन्दी अनुवाद को मुझे दें ताकि मैं उसे रस्मी तौर पर सभा के समक्ष रखूं और उसका प्रमाणीकरण दूं।" माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त ने अध्यक्ष महोदय को संविधान के हिन्दी अनुवाद की प्रतियां समर्पित कीं। तत्पश्चात् अध्यक्ष महोदय ने इस पर हस्ताक्षर किए।

इसके बाद अध्यक्ष ने कहा—"अब सदस्यों को केवल संविधान की प्रतियों पर हस्ताक्षर करने हैं। तीन प्रतियां तैयार हैं। एक कांग्रेस की प्रति है जो हाथ से लिखी गई है और जिस पर कलाकारों ने चित्र अंकित किए हैं। दूसरी प्रति अंग्रेजी में छपी हुई प्रति है। तीसरी प्रति हाथ से लिखी हुई हिन्दी की प्रति है। तीनों प्रतियां मेज पर रख दी गई हैं। सदस्यों से प्रार्थना है कि वे एक-एक करके आएं और प्रतियों पर हस्ताक्षर करें। विचार यह है कि इस सभा में वे इस समय जिस क्रम से बैठे हुए हैं, उसी क्रम से उन्हें बुलाया जाए। प्रधानमंत्री को सार्वजनिक कार्य के लिए शीघ्र जाना है इसलिए मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे पहले हस्ताक्षर करें।" माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू ने तत्पश्चात संविधान की प्रतियों पर हस्ताक्षर किए। तीसरा काम भारत गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति का चुनाव हुआ। इसके लिए राजेन्द्र प्रसाद का नाम आया और वे सर्वसम्मति से राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

14. भारत के प्रथम राष्ट्रपति

छब्बीस जनवरी उन्नीस सौ पचास को देश के गणतंत्र होने की घोषणा की गई। उस दिन भारतीय संविधान सभा द्वारा स्वीकृत सार्वभौम संप्रभुता सम्पन्न गणतंत्र की स्थापना हुई। राजेन्द्र प्रसाद प्रथम राष्ट्रपति बने। शताब्दियों के विदेशी शासन तथा दासता के बाद भारत की स्वाधीनता विश्व-इतिहास में स्मरणीय है। इसके लिए सर्वशक्तिमान परमात्मा को धन्यवाद देना है, जिसने यह शुभ दिन दिखलाया। ऐसे पुण्य अवसर की प्राप्ति के लिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को भी सदा स्मरण रखना है। उन्होंने हमें और संसार को अपना सत्य-अहिंसा और सत्याग्रह जैसा अमोघ शस्त्र प्रदान किया। उन्होंने ही हमें स्वतंत्रता के पथ पर आगे बढ़ाया। इस अवसर के लिए उन अनेकानेक नर-नारियों को भी स्मरण करना है जिन्होंने अपने त्याग और बलिदान से स्वतंत्रता-प्राप्ति तथा भारत में सर्वप्रभुता सम्पन्न प्रजातांत्रिक गणराज्य की स्थापना सम्भव की।

राजेन्द्र प्रसाद ने राष्ट्रपति पद की शपथ लेने के बाद दो प्रमुख बातें कहीं हैं: एक, हमारे लम्बे और घटनापूर्ण इतिहास में यह प्रथम अवसर है जब उत्तर में कश्मीर से लेकर, दक्षिण में कन्याकुमारी तक, पश्चिम में काठियावाड़ और कच्छ से लेकर, पूर्व में कोकीनाडा और उत्तर-पूर्व में कामरूप व अरुणाचल तक एक विशाल देश, एक संविधान और एक संघ राज्य के छत्राधीन हुआ है। इसने सम्पूर्ण देश के करोड़ों नर-नारियों के कल्याण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया है। दूसरी बात, हमारे गणराज्य का उद्देश्य है अपने सभी नागरिकों को बिना किसी वर्ण अथवा वर्ग-भेद के न्याय, स्वतंत्रता और समता प्राप्त कराना तथा उसके विशाल प्रदेशों में बसने तथा भिन्न-भिन्न धर्मों को मानने वाले, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलने वाले और भिन्न-भिन्न आचार-विचार वाले लोगों में भाई-चारे की अभिवृद्धि करना। इन दो बातों का हमें सदा ध्यान रखना है। अधिकारों की चर्चा के साथ अपने कर्तव्य पालन पर भी हमें दृढ़ रहना है।

संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रपति के निर्वाचक-मण्डल में प्रत्येक राज्य की विधान-सभा और केन्द्रीय संसद के दोनों सदनों के सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में मतदाता होते हैं।

भारत का संविधान 24 जनवरी, 1950 को तैयार हो गया। इस संविधान के अनुसार बालिग

मताधिकार के द्वारा राज्यों के विधान मण्डलों और केन्द्र में लोकसभा का चुनाव होना था। इसके लिए मतदाता सूची तैयार करनी थी। संविधान के अनुसार चुनाव की व्यवस्था के लिए चुनाव आयोग की नियुक्ति होनी थी। यह सब नए संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के द्वारा किया जाता था। फिर सवाल था कि राष्ट्रपति का चुनाव कैसे हो जबकि राष्ट्रपति के चुनने वाले निर्वाचक मण्डल का गठन ही नहीं है। विचार करने के बाद निश्चय हुआ कि भारत की संविधान सभा जो अपने में सार्वभौम शक्ति सम्पन्न संस्था भी है, इसका गठन प्रत्येक राज्यों के विधान मण्डल सदस्यों में से दस लाख आबादी पर एक सदस्य चुनकर करें। इस तरह पूरे देश के प्रत्येक दस लाख पर एक सदस्य जो चुनकर संविधान सभा में आए वही एक ऐसे राष्ट्रपति को चुने जो तात्कालिक व्यवस्था के अनुसार अस्थायी राष्ट्रपति के रूप में संविधान के अन्तर्गत उन सारी व्यवस्थाओं को पूरा कराने और बालिग मताधिकार की प्रजातांत्रिक पद्धति के अनुसार प्रत्येक राज्य के विधान मण्डल और केन्द्र के दोनों सदनों का गठन कराए। उसके बाद संवैधानिक रूप से प्रथम राष्ट्रपति का चुनाव हो। स्वाधीन भारत के उदीयमान गणराज्य की दृढ़तम आधारशिला प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद का निर्वाचन था। 12 वर्ष तक राष्ट्रपति के पद पर आसीन रहकर जिन संवैधानिक परम्पराओं को राजेन्द्र प्रसाद ने जन्म दिया तथा उनका पोषण किया, वही भारतीय गणराज्य की स्थिरता के लिए सबसे बड़ा वरदान है। प्रजातंत्री पद्धति में संसदीय प्रणाली को हमारे प्रथम राष्ट्रपति का सर्वोपरि योगदान उनका अदभुत व्यक्तित्व था। संयम, समन्वय, सात्विकता, निरभिमान, सौम्यता उनकी प्रकृति के अंग थे।

भारतीय प्रजातंत्र के पोषण को वह अपनी जवाबदेही मानते थे। जिस काम में वह लगते थे उसको छोड़कर बाकी दूसरे काम को वह गौण समझते थे। वह इस पद की शपथ को सर्वोपरि मानते थे। संवैधानिक राष्ट्रपति थे। संविधान के प्रति उतनी ही जवाबदेही रखते थे। दूसरों से भी वह उतनी ही उम्मीद करते थे। संविधान, सरकार और भारत को एक दूसरे का पूरक मानते थे। संविधान और सरकार से भारत की जनता को क्या लाभ पहुंचाया जा सकता है इसको वह कार्यान्वित करते थे। इसके पीछे उनका रचनात्मक दृष्टिकोण था।

उन्होंने संवैधानिक राष्ट्रपति पद को क्रियाशील बनाया था। भारत सरकार के साथ-साथ राज्यों की सरकारों के क्रियाकलापों से पूर्ण अवगत रखने के लिए उन्होंने अपने सचिवालय को इस प्रकार का आदेश दिया था- "मुझे ऐसा लगता है, संवैधानिक मामलों में राष्ट्रपति की स्थिति लगभग वही है जो इंग्लैंड के सम्राट की है, और सभी मामलों में उसे मंत्रि परिषद को प्रभावित करना चाहिए। इसलिए प्रश्न यह उठता है कि राष्ट्रपति किन परिस्थितियों में और किस प्रकार से मंत्रियों को सलाह देकर उनके निर्णयों को बदलने में प्रभावित कर सकता है। इसलिए आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के जो प्रश्न उठते हैं उनका विवरण दिया जाए, जिससे अवसर आने पर राष्ट्रपति मंत्रियों को अपने सुझाव दे सके।

मंत्रालयों को प्रशासनिक मामलों में और विधान के बारे में कुछ निश्चय करने होते हैं। विधान या तो संसद बनाती है या राज्य के विधान मण्डल। कुछ मामलों में राष्ट्रपति राज्य विधान मण्डलों द्वारा पारित विधेयकों पर अनुमति, मंत्रियों की सलाह के अनुसार देता है। यह स्पष्ट है कि यदि मंत्रालय के सामने आने वाले सभी कार्यपालिका सम्बंधी और प्रशासनिक प्रश्नों की जानकारी उसे न हो तो वह उचित
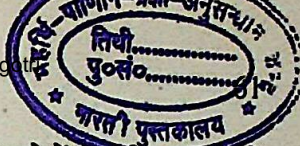
सलाह नहीं दे सकेगा। इसी प्रकार संसद के समक्ष तथा समवर्ती सूची मदों के बारे में राज्य विधान मंडलों के समक्ष आने वाले विधानों के बारे में वह माकूल सलाह नहीं दे सकेगा। यह ठीक है कि मंत्रालय द्वारा मंत्रिमंडल को भेजी गयी रिपोर्ट की प्रतियां और मंत्रिमण्डल की कार्य सूची की प्रतियां तथा साथ भेजे गये पत्र राष्ट्रपति को भी भेजे जाते हैं। इसलिए वह चाहे तो मंत्रिमंडल को निर्णय के लिए भेजे गये किसी प्रश्न पर संवद्ध मंत्रालय को अपनी सलाह दे सकता है और इसी प्रकार विधेयक के बारे में भी सुझाव दे सकता है। कठिनाई व्यावहारिक है। जब से मैं यहां आया हूं तब से मैं यह प्रयास करता रहा हूं कि जो भी कागज पत्र मेरे पास आते हैं उन सबको मैं पढ़ूं, किन्तु मैं यह पाता हूं कि ऐसा करना कठिन है। अतएव मैं यह चाहता हूं कि मेरा सचिवालय मेरे लिए निम्नलिखित काम करे:

(1) यदि किसी मंत्रालय ने स्वयं कोई महत्वपूर्ण निर्णय लिया तो मेरा ध्यान उसकी ओर आकर्षित करे जिससे कि यदि मैं आवश्यक समझूं तो उसे मंत्रिमण्डल के विचारार्थ भेज सकूं।

(2) किसी भी ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर एक संक्षिप्त नोट प्रस्तुत करे जो शुद्ध रूप से उनका विषय नहीं है और केबिनेट के समक्ष जा रहा है जिससे मैं उस विषय पर विचार करके और यदि चाहूं तो उसके बारे में मंत्रिमण्डल को अपने सुझाव दे सकूं। विवादग्रस्त विषयों पर संक्षेप में दोनों पक्ष प्रस्तुत किए जाएंगे। यह भी हो सकता है कि मंत्रिमण्डल में कुछ विषय विवादग्रस्त न हों और वहां सहमति हो किन्तु बाहर उन पर विवाद हुआ हो। मुझे ऐसे सब विषयों की ओर आम जनता के दृष्टिकोणों की जानकारी दी जाए- चाहे वे सरकार से बाहर के ही क्यों न हों।

(3) कोई विधेयक पुन: स्थापित किया जाता है या विनिश्चय करने के पहले भी कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं और कभी-कभी जब विधेयक पर विचार-विमर्श होता है उस समय भी विभिन्न प्रक्रमों (दिशाओं-हालतों) पर परिवर्तन किए जाते हैं। ऐसे सभी अनिश्चित और विवादग्रस्त विधेयकों पर संसद में जो कार्यवाही हो उसकी पूरी जानकारी मुझे दी जाए जिससे कि मैं यदि आवश्यक समझूं तो सुझाव दे सकूं।

(4) राज्य के राज्यपाल अनुमति के लिए जिन विधेयकों को भेजते हैं उनकी स्थिति भिन्न है। यहां ऐसे विधेयकों की मंत्रालय द्वारा सरकार के दृष्टिकोण से परीक्षा की जाती है। मुझे केवल अंतिम सिफारिश भेजी जाती है। बहुत से मामलों में अनुमति देना एक औपचारिकता मात्र है, किन्तु कुछ ऐसे भी मामले हो सकते हैं जिनमें विवाद उठा हो। ऐसे मामलों से मेरा सचिवालय मेरे सामने सभी दृष्टिकोण रखे; जिससे मंत्रिमण्डल द्वारा सिफारिश किए जाने से पहले यदि मैं आवश्क समझूं तो सुझाव दे सकूं।

"इसका यह अर्थ हुआ कि मेरे सचिवालय को सतत जागरूक रहना पड़ेगा और केन्द्र सरकार के प्रशासनिक तथा विधायी क्रिया-कलापों बारे में जानकारी भी रखनी होगी। साथ ही उसे समवर्ती सूची में राज्य सरकार की विधायी संक्रियाओं पर भी नजर रखनी होगी और सचिवालय को मुझे सभी महत्वपूर्ण विषयों की जानकारी पूरे तौर से देनी होगी, जिससे मुझे मंत्रिमंडल को उनके किसी निर्णय

से पहले प्रभावित करने का अवसर मिले। यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि जब मंत्रिमण्डल एक बार निर्णय ले लेता है, तब राष्ट्रपति को मंत्रिमण्डल की सलाह स्वीकार करके उसके निर्णय के अनुसार काम करना पड़ता है। वह जो प्रभाव डाल सकता है वह निर्णय लेने के पहले की अवस्था पर ही डाल सकता है और यदि मेरा सचिवालय मुझे आवश्यक जानकारी न दे तो मैं राष्ट्रपति के कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर पाऊंगा।

राजेन्द्र प्रसाद ने राष्ट्रपति पद की गरिमा को प्रतिपादित किया। वह प्रतिदिन की कार्य-पद्धति सम्बन्धी गुत्थियों को भी सुलझा लिया करते थे। इसके लिए मंत्रियों से राजकाज संबंधी बातों तथा राजनीतिक वातावरण को समझने, किसी विषय पर दल विशेष की प्रतिक्रिया को भांपने और मंत्रिमण्डल तथा विभागों की लोकप्रियता को नापने के उद्देश्य से प्रतिदिन राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद मंत्रियों से बातचीत करते थे। यह प्रक्रिया असंवैधानिक नहीं थी। परम्परा बनाने की बात थी। वह अपनी जवाबदेही को समझते थे।

राजेन्द्र प्रसाद भारत सरकार के संवैधानिक राष्ट्रपति के कृत्य को, भारतीय जनता के प्रतिनिधि को सदा ध्यान में रखते थे। किसी भी विषय पर सभी दलों की प्रतिक्रिया से अपने को अवगत रखना चाहते थे। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और उनके द्वारा किए गए काम में रुचि रखते थे। प्रत्येक प्रान्त के हर वर्ग के लोगों से सीधा सम्पर्क बनाए रखते थे। साल में एक बार पूरे देश के भ्रमण में प्रमुख विषयों की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करते थे। उस जानकारी का अपने सुझाव द्वारा राज्य सरकार ए सरकार को काम करने के लिए प्रेरित करते थे।

बारह साल तक वह भारत के राष्ट्रपति रहे। अपने विचारों और काम करने की पद्धति विधायकों, सांसदों, मंत्रियों एवं अफसरों को प्रभावित किया। उन्होंने अपने काम से यह [illegible] नहीं दिया कि वह केवल संवैधानिक राष्ट्रपति हैं। राष्ट्रपति होकर राजेन्द्र प्रसाद के मिजाज [illegible] परिवर्तन नहीं आया। तनिक भी अहंकार की छाया उन्हें छू नहीं पाई। राष्ट्रपति भवन में [illegible] शालीनता से वे देश-विदेश के विशिष्ट अतिथियों का स्वागत करते थे, उतनी ही नम्रता, स्नेह प्रेम से वे दूरस्थ गांव के निवासी, साधारण कृषक से भी मिलते थे। सारी सुरक्षा-व्यवस्था औपचारिक मर्यादाओं की रक्षा करते हुए राष्ट्रपति भवन के द्वार पर पहुंचते ही छोटे-बड़े सभी को [illegible] लगता था कि वह अपने ही घर आया है, इस भवन का स्वामी उसका एक कुटुम्बी है, वह बन्धु है, [illegible] है, पितामह है। प्रत्येक मिलने वाला गद्‌गद होकर लौटाना था। सबको लगता था मानो वह आत्मीय गुरुजन से मिलकर लौट रहे हैं।

सन् 1950 से लेकर 1962 की 12 मई तक राजेन्द्र प्रसाद ने जिस गौरव और सतर्कता से राष्ट्रपति के रूप में राष्ट्र-रथ को चलाया उसका साक्षी इतिहास है। राजेन्द्र प्रसाद 13 मई को राष्ट्रपति-भवन [illegible] विदा हो रहे थे। उस अवसर पर उनके विदाई समारोह में भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरल[illegible] नेहरू ने भर्राये कंठ से कहा— "राजेन्द्र बाबू का और मेरा पैंतालीस बरस का साथ रहा। इस ल[illegible] अर्से से मैंने उनको बहुत देखा और उनसे बहुत-कुछ सीखा। हजारों तस्वीरें आज मेरे सामने से गुज[illegible] जाती हैं।"
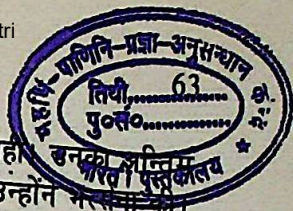
राजेन्द्र प्रसाद 13 मई, 1962 को राष्ट्रपति पद से निवृत्त हुए। कर्म से नहीं। उनका अन्तिम सार्वजनिक भाषण पटना गांधी मैदान में हुआ। भारत पर चीनी हमले की उन्होंने भर्त्सना की। उन्होंने चीन द्वारा तिब्बत पर कब्जा करना अनैतिक बताया। उन्होंने तिब्बत को मदद देना कर्तव्य समझा। राजेन्द्र प्रसाद जनकवत् थे। गीता में जनक के सम्बन्ध में कहा गया है:—

कर्मणैव हि संसिल्मिा स्थिताजन कादयः ।
लोक संग्रह मेवामि संपश्चन्कर्तुम मर्हसि ।।

राजर्षि जनक आत्मज्ञानी थे। इसलिए लोक-शिक्षा के लिए उन्होंने सब नियत कर्मों का भलीभांति आचरण किया। जनता को जीवनयापन तथा कर्म करने की शिक्षा देने के लिए वे कर्म करते थे। मर्मज्ञ अपने कार्य-कलाप के द्वारा ऐसा आदर्श स्थापित करता है, जिसका अन्य अनुसरण कर सकें—यही राजेन्द्र प्रसाद के जीवन से शिक्षा ली जा सकती है।

राजेन्द्र प्रसाद उनासी वर्ष के थे। अस्वस्थ होते हुए भी उन्होंने सार्वजनिक काम करना कभी नहीं छोड़ा। देहावसान के दिन भी उनका एक सार्वजनिक कार्यक्रम पटना विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण देना था, जिसे वे अचानक स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण पूरा नहीं कर सके। लेकिन, इस अवसर के लिए भी उनका लिखित भाषण बिहार विधान सभा के तत्कालीन अध्यक्ष डा० लक्ष्मी [illegible]ण सुधांशु ने पढ़कर सुनाया। 28 फरवरी, 1963 की रात्रि के दस बजे वे परलोकवासी हो गए।
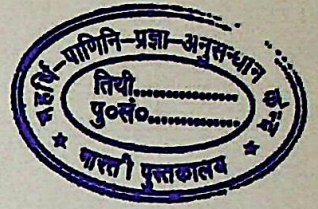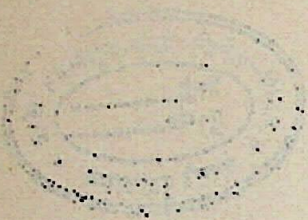
लेखक परिचय

वाल्मीकि चौधरी (जन्म : 26 जुलाई, 1921 जमालपुर, बिहार) 1938 में सदाकत आश्रम में डा० राजेन्द्र प्रसाद के सम्पर्क में आए। 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान गिरफ्तार किए जाने पर उन्हें राजेन्द्र बाबू के साथ ही जेल में रखा गया। तब से चौधरीजी निरन्तर राजेन्द्र बाबू के सहयोगी रहे। उनके राष्ट्रपति बनने पर चौधरीजी उनके निजी सचिव के रूप में उनके साथ रहे। इस प्रकार 24 वर्ष तक उन्हें राजेन्द्र बाबू को निकट से देखने-जानने का अवसर मिला!

चौधरीजी लोकसभा के सदस्य भी रहे हैं और खादी ग्रामोद्योग आयोग के सदस्य के रूप में उन्होंने महत्वपूर्ण सेवा की है। आप हिन्दी के जाने-माने लेखक हैं और अब तक आपने आधा दर्जन पुस्तकों की रचना की है। सरल और सहज ढंग से बात को कहना उनकी शैली की विशेषता है जिसका बहुत सुन्दर नमूना प्रस्तुत पुस्तक में देखा जा सकता है।

आवरण सज्जा : पी० के० सेनगुप्त